८४३.१

सामाजिक उपन्यास

जययात्रा

लेखक

मन्मथनाथ गुप्त

किताब महल

इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण, १९४९

प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद

मुद्रक—आर० एन० अवस्थी

कायस्थ पाठशाला प्रेस एण्ड प्रिंटिंग स्कूल, इलाहाबाद

परिचय

जययात्रा एक बहुत ही अजीब उपन्यास है। यह आमतौर पर धर्म पर तथा खासतौर पर हिन्दू-मुसलिम दङ्गों पर एक भयङ्कर फबती है। कैसे दङ्गे के कारण एक सोने की गृहस्थी उजड़ गई यह इसी की कहानी है। अवश्य सुरमा बिलकुल सही दिमाग या नार्मल टाइप की स्त्री नहीं है, पर फिर भी दङ्गे के कारण वह जिस समस्या में पड़ जाती है, उससे वह एक कर्तव्य-सङ्कट में फँस जाती है। शायद वह जिस प्रकार अपनी समस्या को सुलझाती है, वह कुछ पाठकों को पसन्द न आवे, और पसन्द न आने की ही बात है, पर स्मरण रहे जैसे भी वह समस्या सुलझाती उसे एक भयङ्कर अपराध करना पड़ता। लेखक ने साम्प्रदायिक संस्थाओं की खूब पोल दिखलाई है, साथ ही यह दिखलाया है कि यद्यपि इन दङ्गों को कोई नहीं चाहता फिर भी ये क्यों होते हैं। लोग किस प्रकार एक धर्म से दूसरे धर्म में जाते हैं, इसका भी इसमें संकेत है। पुस्तक का नाम इसी पहलू पर है। पुस्तक के अन्तिम शब्द विशेष द्रष्टव्य हैं—"६६ फी सदी धर्म परिवर्तन का इतिहास इसी प्रकार है, और बाकी जो एक फी सदी है वह केवल एक जेल से दूसरी जेल में जाना है।"

१

१९३१ ईस्वी वाला कानपुर का हिंदू-मुसलमान-दङ्गा अनेक तथा विविध कारणों से हिंदू और मुसलमान दोनों-सम्प्रदायों के लोगों के स्मृतिपटल पर अमिट रूप से अंकित रहेगा। इन सम्प्रदायों ने यदि खुलकर कहीं पशुता से होड़ ली है, तो कानपुर में—सन् १९३१ में।

हत्या, बलात्कार, लूट, राहज़नी, गृहदाह जिस दृष्टि से भी देखा जाय। यह दङ्गा मानवजाति के लिये कलङ्क-स्वरूप है। धर्म की लाश पर इस दङ्गे ने एक और कील ठोंक दी है। सेंट बार्थोलमिव का हत्याकांड इस घटना की तुलना में बच्चों का खेल था। वह असल में एक व्यक्ति का अपराध था, किन्तु इस दङ्गे की ज़िम्मेदारी सारे समाज पर है, सामूहिक रूप से भी और वैयक्तिक रूप से भी—दुतरफा। 'मनुष्य मननशील प्राणी है', इस उक्ति में इस दंगे के कारण सन्देह होने लगता है। मनुष्य ने जब-जब सामूहिक रूप से नर-रक्त की नदी बहाई है—और उसने ऐसी नदी बारम्बार बहाई है—तब-तब उसने सत्य या मिथ्या रूप से, सफलता अथवा असफलता के साथ संसार के विस्फारित नेत्रों के सामने एक-न-एक आदर्श पर्दे की तरह ऊँचा कर रखा है कि यह दंगा आदर्श-हीन था, निरी

पशुता थी। अपनी पशुता का नङ्गा रूप छिपाने के लिए किसी बहाने की खोल, यहाँ तक कि झूठ का तानाबाना भी इस बार खड़ा नहीं किया गया था। सदियों तक पड़ोस में रहकर, लेन-देन करके एवं खा-पीकर, यहाँ तक कि एक ही पड़ोस में मरकर भी, ये दो सम्प्रदाय एकाएक एक दूसरे को नेस्तनाबूद करने के लिये दौड़ पड़े, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

संयुक्त प्रांत के दूसरे नगरों से कानपुर में इस प्रकार के दंगे की आशा कम की जाती है, क्योंकि कानपुर खरीद-फरोख्त, आदान-प्रदान, लेन-देन तथा वाणिज्य का सबसे बढ़ा-चढ़ा नगर है। कदाचित् यह भारत की सबसे बड़ी मंडी है। व्यापार अनिवार्य रूप में सामूहिक है, यह सहयोग का एक अंग है; अतएव जहाँ पर यह मनोवृत्ति अधिक पुष्ट होती है, वहाँ पर हाथापाई तथा लड़ाई की मनोवृत्ति फीकी तथा पङ्गु हो जाती है। यदि कहा जाय कि प्रत्येक नगर की एक जाति है, तो आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, काशी, नवद्वीप, देवबन्द ये ब्राह्मण नगर माने जायँगे। सैंडहर्स्ट क्षत्रिय नगर होगा। कलकत्ता, बम्बई, लंडन, पेरिस में ब्राह्मणत्व अधिक है या बनियापन, कहना कठिन है। कलकत्ते की धमनियों में बम्बई से फी सैकड़ा अधिक ब्राह्मणत्व है, इसमें सन्देह नहीं। कानपुर नगर के जातिनिर्णय के सम्बन्ध में तो किसी प्रकार दो राएँ हो ही नहीं सकतीं। कानपुर नगर बनिया है, पूर्ण रूपेण बनिया है, बनिया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कानपुर का जीवन ही व्यापार है, कानपुर के जीवन का आनन्द है खरीद-फरोख्त, लेन-देन, इस अवस्था में कानपुर में एक ऐसे दङ्गे का होना अत्यन्त विस्मयोत्पादक है।

अपने भाग्य का निपटारा करने के लिये कानपुर शहर में हज़ारों आदमी आते रहते हैं। कुली, मजदूर, मारवाड़ी, पञ्जाबी और कुछ बङ्गाली बाबू भी। कहते हैं कानपुर में पैसा है, इसलिये इस पैसे रूपी शहद की चाट से यहाँ नित्य झुण्ड-के-झुण्ड लोग आते रहते हैं। किसान बाबा आदम के ज़माने का प्रतिदान-पराङ्मुख हल तथा 'घर-दुआर' छोड़कर यहाँ की मिलों में कुली का काम करने आते हैं, हिंदुस्तानी यहूदी मारवाड़ी अपनी जन्म-भूमि छोड़कर यहाँ व्यापार के लिये आते हैं, वे यहाँ रातोरात धनी होते हैं, उलूक-वाहिनी लक्ष्मी के वे वरपुत्र हैं। बंगाली यहाँ आते हैं बुद्धि का व्यापार करने, यह मानों उनका प्रारब्ध ही है।

इन सब बातों के फलस्वरूप कानपुर लम्बाई, चौड़ाई, जनसंख्या तथा महत्त्व में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। यह शीघ्र ही इस प्रदेश का श्रेष्ठतम केंद्र हो जायगा, वह समय आ रहा है जब कानपुर जो आज सोचेगा, उसे ही कल प्रांत भर सोचेगा।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० एम० एस० सि० पि० आर० एस० श्री हरिपद मजूमदार कानपुर के एक कालेज के विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त होकर सन् १९२८ में कानपुर आए। उनकी तनख्वाह अच्छी खासी थी। उनके साथ-साथ उनकी सद्योविवाहिता सप्तदशवर्षीया सुन्दरी स्त्री सुरमा भी आई, और आई एक गाड़ी भर किताबें। अध्यापक मजूमदार विद्याव्यसनी पुरुष हैं; उनकी निजी प्रयोग-शाला, कालेज, वैज्ञानिक मासिक पत्रिकाओं तथा छात्र-मंडली से ही

उन्हें फुर्सत नहीं मिलती। अत्यधिक अध्ययन के कारण वे शरीर से सदा कृश रहे हैं, आँखों में वे अधिक शक्तिवाला चशमा लगाते हैं।

सुरमा सङ्कोची स्वभाव की है, उसपर इस प्रदेश की भाषा अच्छी तरह नहीं समझ पाती, अतएव मजूमदार-परिवार के परिचितों की परिधि बहुत छोटी है। रही अध्यापक मजूमदार की बात, उन्हें तो परिचितों तथा परिचयों की कोई आवश्यकता ही न थी, विज्ञान ने ही उनके सारे अस्तित्व पर अधिकार कर रखा था, वहाँ दूसरे की आवश्यकता या प्रतीक्षा थी ही नहीं।

पति जब कालेज चले जाते तो सुरमा बँगला मासिक पत्रिकाओं के पन्ने उलटती, सचित्र अंग्रेजी पत्रिकाओं के चित्र देखती, वीणा बजाती, चिट्ठियाँ लिखती, जँगला खोलकर सड़क के यात्रियों को देखती, जँभाइयाँ लेती तथा सो जाती। एक अपढ़ कहारिन थी, वह चौका-बर्तन करने के बाद अपने कपड़े का एक हिस्सा ज़मीन पर बिछाकर सो जाती थी। घर की मालकिन के साथ घनिष्ठता बढ़ाने की चेष्टा वह कभी नहीं करती थी, अपने काम से काम रखती थी। सुरमा जब पहले-पहल कलकत्ते से आई थी तो वह कहारिन की इस मितभाषिता से प्रसन्न ही हुई थी, और मन में उसे धन्यवाद देती थी, किंतु उस समय वह तुरत ही कलकत्ता से आई थी, इसलिये चिट्ठियों के लिखने में ही उसका बहुत-सा समय निकल जाता था। बाद में धीरे-धीरे चिट्ठी लिखना घट गया; और जो रहा-सहा था भी, उसमें पहले का रस नहीं रहा, तब वह अपनी कहारिन की मितभाषिता को दूसरी दृष्टि से देखने लगी। कहारिन के प्रति अब उसका वैसा उदासीन भाव न रहा।

उधर अध्यापक महोदय कानपुर में आने के बाद से पठन-पाठन और खोज में और भी अधिक समय तथा मन लगाने लगे थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी नींद पर भी कतरनी चला दी थी, और इस प्रकार उससे भी कुछ समय कतर लिया करते थे। उनका गोरा-गोरा कृश शरीर पठन तथा खोज के परिश्रम से निखर-निखरकर विद्युल्लता का-सा आकार धारण करने लगा। जो वैज्ञानिक है, जिसने प्रकृति के अन्तःपुर के समस्त रहस्यों को उद्घाटित करने का बीड़ा उठाया है, उसका व्रत तभी समाप्त होगा जब प्रकृति अपने रहस्य रूपी हृत्पिंड को कुछ भी न छिपाकर, खोलकर वैज्ञानिक की मेज़ पर रख देगी, उसे अधिक नींद कहाँ आ सकती है?

सुरमा यदि चाहती तो अपने मनोरञ्जन के निमित्त सिनेमा या थियेटर में जा सकती थी, इच्छा करने पर वह घर पर अधिक पावरवाला रेडियो भी लगा सकती थी। गृहस्थी में पैसों की कुछ कमी तो थी नहीं, इसके अतिरिक्त उसी के हाथ में रुपया-पैसा भी रहता था। वह कभी-कभी सिनेमा में न जाती हो, यह बात नहीं; जाती अवश्य थी, किन्तु वहाँ अकेले में बैठने से विशेष आनन्द नहीं आता था। सिनेमा देखते-देखते चित्रपट के नायक-नायिका के साथ वह अपने जीवन का कोई सम्बन्ध-सूत्र ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करती थी, उनके जीवन के प्रपंच के भीतर से वह अपने लिये एक संकेत खोज निकालने की चेष्टा करती थी, किन्तु उनके साथ कोई भी जीवित सम्बन्ध ढूँढ़ने में असमर्थ होकर वह पहले से कहीं अधिक दुखित होकर लौट आती थी। अध्यापक मजूमदार के पास इतना फालतू समय नहीं था, कि वे सुरमा के साथ

बायस्कोप में जाकर अपना कुछ समय नष्ट कर सकते। विज्ञान की सतत प्रसून होनेवाली गवेषणा के क्षेत्र को देखकर कौन सत्य-संध वैज्ञानिक समय की अमानत में इस प्रकार ख़यानत कर सकता है? अध्यापक मजूमदार की आँखों में सिनेमा देखना और समय का अपव्यय करना एक ही बात थी।

सुरमा ने कई बार पति के वैज्ञानिक कार्यों में दिलचस्पी लेकर सहयोग करने की चेष्टा की, अध्यापक ने भी एक अकल्पित आशा से अनुप्राणित होकर उसके इस सहयोग को स्थायी करने की चेष्टा की, किन्तु सुरमा किसी भी प्रकार प्रयोगशाला की अनेकानेक जटिल प्रक्रियाओं तथा दुरूह पर्यवेक्षण में अपना मन न लगा सकी। तब वह पति को अलग छोड़कर अपने ढङ्ग से अपना मनोरञ्जन करने की चेष्टा करने लगी, किन्तु उसमें भी वह सफल न हो सकी। कलकत्ते से आने के बाद साल भी बीतने नहीं पाया कि सुरमा ने एक दिन शीशे में अपनी आकृति देखी। उसने देखा कि उसके स्वास्थ्य में घुन लग गया है, रूप की वह माधुरी अब नहीं रही। उसका सिर चकराने लगा, उसकी भौंहों पर बल आ गया।

बीच-बीच में सिर-दर्द की शिकायत होती रहने से तथा इसी प्रकार के दूसरे कारणों से उसका मिज़ाज भी चिड़चिड़ा हो गया। एक अज्ञात क्रोध उसके अन्दर धुंधुआया करता था, वह कुछ भी समझ नहीं पाती थी कि माजरा क्या है।

एक दिन पति के कालेज चले जाने के बाद सुरमा के सिर में दर्द होने लगा। यह शिकायत आजकल प्रायः हो जाती थी। वह एक

आराम-कुर्सी पर बैठकर कोई पुस्तक-पढ़ने की चेष्टा कर रही थी, पढ़ क्या रही थी, पन्ने उलट रही थी। बुढ़िया कहारिन वहीं पास ही लेटी हुई खर्राटे भर रही थी। रसोइया ब्राह्मण सबको खिला-पिला-कर रोज़ की तरह चार घंटे के लिये अपने घर चला गया था। मकान में इस समय केवल दो प्राणी थे—वह और कहारिन।

सुरमा ने जब देखा कि पढ़ने में तबीयत नहीं लगती तो वह पुस्तक हटाकर सोने की चेष्टा करने लगी, किन्तु नींद उसके नजदीक आई ही नहीं। खर्राटे की तेज़ आवाज़ सुनते-सुनते सुरमा को एकाएक क्रोध आ गया, वह चिल्ला उठी—मर कहीं की, दिनभर सिर्फ पड़कर सोने के अतिरिक्त और भी कुछ है? ऐसी कुलक्षणी बुढ़िया मैंने कहीं नहीं देखी।......

बुढ़िया चौंककर उठ बैठी, चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर भी उसकी समझ में नहीं आया कि मामला क्या है, बोली—क्यों? बात क्या है? क्या बाबूजी वापस आ गए? चाय के लिए पानी चढ़ा दूँ? चूल्हा सुलगाऊँ।

सुरमा का सिर-दर्द उस समय तक और भी बढ़ चुका था, वह बुढ़िया की बातचीत के ढङ्ग से और भी झुझलाकर बोली—चूल्हे में आग कैसी? अपने मुँह को ही क्यों नहीं सुलगा देती शैतान औरत? ज़रा एस्पिरिन की शीशी मुझे ला देती, वह भी तुझसे नहीं हुआ, इतनी देर से सिर-दर्द के मारे मरी जा रही हूँ, तुझे किसी की कुछ परवाह भी है? हाँ, तुझे परवाह ही क्यों हो, चाहे कोई मरे या जिए, तेरी बला से!

बुढ़िया कुनमुनाती हुई उठी और एस्पिरिन की शीशी लाकर सुरमा के हाथ में रख दी। सुरमा एक घूँट पानी के साथ आधी दर्जन गोलियाँ निगल गई, और उसने ओडिकालन की शीशी मँगाकर उससे तर करवाकर एक पट्टी सिर पर बँधवाई। बुढ़िया आज रोज़ की तरह हुक्म बजाकर ही हट नहीं गई, वह सुरमा की कुर्सी के निकट ही अपनी धोती का हिस्सा बिछाकर बैठ गई।

बुढ़िया के प्रायः सब बाल सफेद हो गये थे। उसकी मूँछ की जगह पर दो-चार बड़े-बड़े बाल थे। उम्र अधिक होने पर भी उसकी देह मज़बूत थी, केवल यही नहीं, वह काम-काज में भी तेज़ तथा होशियार थी। मजदूरी के धन्धे में अभ्यस्त उसकी हड्डियाँ......। बुढ़िया फर्श पर बैठ गई, किन्तु उसने सोने का उपक्रम नहीं किया, बल्कि युवती मालकिन की ओर इकटक देखने लगी। यह स्पष्ट था कि उसके मन में कोई बात उछल रही थी, मानों वर्षों का पुंजीभूत कोई अनुभूतिलब्ध सत्य हो। बुढ़िया को इस तरह अप्रत्याशित रूप से घनिष्टता करने के लिये उद्यत देखकर सुरमा उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी।

बुढ़िया की जीभ पर मानों आत्म-प्रकाश के लिये व्याकुल होकर ये शब्द प्रतीक्षा कर रहे थे, वह तोते की तरह रटा हुआ पाठ सुनाने लगी—कुछ नहीं माँजी, मैं केवल कहने जा रही थी कि सिर्फ दवा-दारू से ही यह बीमारी अच्छी नहीं हो सकती। सभी तो देख रही हूँ कुछ अंधी तो हूँ नहीं, हमेशा अकेली ही तो रहती हो, इस हालत में सिर में दर्द नहीं होगा, तो क्या होगा? तुम्हारी उम्र में मैं कई लड़के की माँ

हो चुकी थी, घर भर में लड़कों का झुंड खेला करता था, इतना शोर मचा रहता था मानो आँगन में सड़क कूटनेवाला एंजिन चलता हो। उनके मारे धन्धे पर नहीं जा पाती थी, उन्हें ज़रा-ज़रा अफीम देकर सुला देती थी, तब कहीं पिंड छुड़ाकर धन्धे पर जा पाती थी—बुढ़िया ने उस मादक विस्मृत युग का स्मरण करके एक गहरी साँस ली, फिर कुछ सँभलकर एक मलिन हँसी हँसी। उसके मन में बिजली की तरह शीघ्रता से कुछ तसवीरें एक के बाद एक उसकी आँख को मानों झुलसाकर चित्रपट की तरह नाच गईं।

सुरमा बुढ़िया की बात का रुख ठीक-ठाक नहीं समझ सकी, किन्तु जितना भी वह समझ सकी, उसके चेहरे पर एक दबी हँसी दौड़ गई, बुढ़िया की राय में झुण्ड-के-झुण्ड नटखट लड़कों की माँ होना ही सिर दर्द की बढ़िया दवा है, सुनकर उसके हृदय पर गुदगुदी-सी लगी। उसने कल्पना में अपने को एक दफा लड़कों की माँ के आसन पर बैठाकर देखा। बुढ़िया उत्साहित होकर कहती जा रही थी—मेरा आदमी बिलकुल तुम्हारे बाबू की तरह था, रुपये के अलावा दुनिया में जैसे उसके लिये कुछ था ही नहीं, रुपया ही उसका जप था, रुपया ही उसका तप। दिन में बस्ता ढोया करता, और रात में मिलों में मजदूरी करता। कम-से-कम वह यही कहकर रात में निकल जाता था, अर्थात् घर पर एक तरह से रहता ही नहीं था।

कुछ सोचकर मानों आगा-पीछा करती हुई बुढ़िया बोलने लगी—इधर कुछ दिनों से वह गृहस्थी में एक कानी कौड़ी भी नहीं देता था, लेकिन मैं कोई ऐसे बाप की बेटी नहीं हूँ कि किसी की परवाह करूँ।

बर्तन माँजकर, चक्की पीसकर, पानी भरकर मैं अपने तीन बेटों के लिये दाल-रोटी का इन्तजाम कर ही लेती थी। बल्कि कभी-कभी ऐसी नौबत आ जाती थी कि मेरा आदमी भी आकर मेरे चौके में रोटी खा जाता था। आकर कहता था—मुन्नू की माँ, तबियत कुछ खराब है, धन्धे पर नहीं जा सकता। मैं कहती थी—इसकी कोई चिन्ता नहीं, लड़कों की देख-भाल करो, उनके साथ खेलो, मैं धन्धे पर जा रही हूँ, तुम आराम करो। आठ-दस दिन यों ही पड़ा रहता था, लड़कों को शरारत सिखाता, मकान में बैठे-बैठे मुहल्लेवालों के कान के कीड़े निकाला करता, फिर ज्योंही चेहरा जरा ठीक हुआ, पाँव में ज़ोर आया कि बिना कुछ कहे-सुने वह जंगली चिड़िया जंगल में ही उड़ जाती। वह ज़माने ही और थे माँ जी, तब बदन में ताकत थी, मेहनत के बल जो चाहे सो कर सकती थी। अपने आदमी की परवाह मैंने कभी नहीं की ·····।

बुढ़िया अपनी बातचीत में 'कुछ दिनों से' कहकर जिस समय का उल्लेख कर रही थी, वह कम-से-कम तीस-पैंतीस साल पहले की, अर्थात् उन्नीसवीं सदी की बात थी। परन्तु बुढ़िया कल्पना की आँखों से उस समय तथा उन घटनाओं को इतना स्पष्ट देख रही थी मानो वे कल ही घटित हुई हों। भावावेश में वह अपना वक्तव्य कहती जा रही थी, मानों वह ज़ोर-ज़ोर से बोलती हुई सोचने की क्रिया कर रही हो। लेकिन सुरमा उसकी बातें नहीं सुन रही थी। वह सिर्फ अपनी एकाग्रता की ही बात सोच रही थी। सुरमा ने सोचते-सोचते किंचित् आश्चर्य तथा खीझ के साथ देखा कि यही वाक्य बार-बार उसके कानों में गूँज रहा

है, "तुम्हारी उम्र में मैं कई लड़कों की माँ हो गई थी।" सबसे ज्यादा यही बात ! क्या आश्चर्य है ?

किन्तु पति के विरुद्ध सुरमा को कोई शिकायत नहीं थी, वे तो धीर, स्थिर, विनयी, त्यागी तथा आदर्शवादी थे। पति की ही तरह पति थे। उसको इस प्रकार एकांतवास में जीवन के दिन गिनने पड़ रहे हैं, इसके लिये उसके पति ज़िम्मेदार हैं, हाँ, अवश्य, किन्तु··। किन्तु क्या इसका यह नतीजा नहीं है कि वे स्वयं इससे अधिक कठिन एकांतवास में अपना जीवन बिता रहे हैं ? सुरमा अन्धी तो थी नहीं, क्या वह यह बात नहीं देख रही थी कि उसका पति दिन-ब-दिन दुबला होते-होते हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया है। इसके अतिरिक्त वे अपनी स्त्री के प्रति उदासीन तो हैं नहीं। अभी उस दिन की बात है उसे मामूली-सी बीमारी हो गई थी तो रातभर जागकर उसकी कितनी अथक सेवा की थी ! नहीं, जहाँ तक इन बातों का सम्बन्ध है, पति के विरुद्ध उसकी कोई शिकायत हो नहीं सकती थी, वे सचमुच मानव-शरीर में देवता हैं।

पति के गुणों की मानसिक पर्यालोचना कर बारंबार उनको कसौटी पर कसकर खरा पाने पर भी उसके मन में इस बात से कोई सान्त्वना नहीं हुई। बल्कि वह और बेचैन हो गई। स्वामी का देवोपम चरित्र, कंदर्प के समान रूप, अपरिमित धैर्य तथा अध्यवसाय को देखकर न मालूम क्यों उसे ज्ञात होने लगा कि वह बड़ी असहाय है, पैर की जंजीरें उसे और कठिन मालूम होने लगीं।

बुढ़िया बड़बड़ाती हुई कब उठकर चली गई, इसका सुरमा को पता भी नहीं था। बुढ़िया के प्रति उस दिन से उसके मन में एक तरह की इज्जत का भाव हो आया। बुढ़िया और उसके बीच इस प्रकार का एक सम्पर्क का सूत्रपात हो गया, जिसे ठीक मालकिन-कहारिन का सम्बन्ध नहीं कह सकते। बुढ़िया अब बातों में अपने जीवन-द्वन्द का इतिहास प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके सुनाने लगी, कैसे रातें जागकर, चक्की पीसकर उसने लड़कों का पालन किया, फिर कैसे एक-एक कर इन जिगर के टुकड़ों को कलेजे पर पत्थर रखकर वह मरघट में सुला आई, कैसे प्रत्येक धक्के के बाद हृदय को नई आशा से बाँधकर जीवन-संग्राम में कूदी, और कैसे अब भी उसके जीवन में द्वन्दों का ताँता जारी है। शिक्षिता तरुणी सुरमा का मन इन बातों को सुनकर उसके प्रति श्रद्धा से भरकर छलकने लगता था। उसके निकट बुढ़िया की यह राम-कहानी इलियड के समान प्रतीत होती थी।

कहाँ ऐसा कवि है जो इन रास्ते में पड़े हुए, अज्ञात दलितों का इतिहास सुनावे, जो वीरता में किसी वीर की विरदावली से कम न न होगा, इतिहास क्या विश्व-साहित्य में हमेशा प्रख्यात-प्राचीन मध्यवित्त श्रेणी की कहानियों की ही प्रधानता रहेगी ? सुरमा को ऐसा भासित हो रहा था मानो बुढ़िया उससे उन्नत श्रेणी की प्राणी हो, किंतु वह अपने लिये कोई चारा नहीं देख रही थी।

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, उसने सुरमा के मुँह की ओर भी नहीं देखा। उसका समय न्यूनाधिक एक-रसता में कटने लगा। इस बीच अध्यापक मजूमदार ने किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर निबंध लिखकर विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त की, किन्तु सुरमा को इस घटना से न तो कोई आनन्द ही हुआ, न उत्तेजना ही। इस घटना ने उसके हृदय के अन्तरतम प्रदेश में एक बुलबुले की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म लहर की भी सृष्टि नहीं हुई। सुरमा की दो-एक सखियों ने जो अबतक उससे पत्र-व्यवहार रखती थीं, समाचार-पत्रों में डाक्टरेट का यह समाचार पढ़कर उसको बधाई के पत्र भेजे, और "जीजा जी" को भी। किन्तु सुरमा ने इन सब अभिनन्दनों की बात पति से नहीं बताई, यह बात नहीं थी कि वह पहले से ही इन अभिनन्दनों को दबा जाना चाहती थी, किन्तु एक मेज़ पर खाते समय जब वह इस बात को कहने की इच्छा करती तो पति के मुख की ओर देखकर उसका सब उत्साह जाता रहता, और वह अपनी इच्छा को कार्य रूप में परिणत न कर पाती। विशेषकर जब प्रांत भर के सब समाचार-पत्रों में अध्यापक

मजूमदार का फोटो छप चुका है, और सब सामयिक पत्रों ने उनकी कुछ-न-कुछ प्रशंसा की है तो भला उसकी अर्ध-शिक्षिता सखियों के—अध्यापक की तुलना में वे अर्धशिक्षिता नहीं तो क्या थीं—अभिनन्दनों की उनके निकट क्या कद्र हो सकती है ? इन्हीं बातों को सोचकर वह इन अभिनन्दनों को एकदम दबा गई। उसने अपनी ओर से इन अभिनन्दनों के लिये सखियों को धन्यवाद लिख भेजा।

उसकी एक तरुणी सखी अभी हाल में ही जननी हुई है, उसके यहाँ से आई हुई छोटी-सी चिट्ठी केवल उसके बच्चे के वर्णन से भरी थी, वह कैसे हँसता है, कैसे रोता है, उसके हाथ कैसे कोमल हैं, उसके सुख और बीमारी के सम्बन्ध में माँ को कितनी असीम उत्कंठा है, इत्यादि। यह छोटी-सी चिट्ठी माँ के हृदय-स्पंदन की एक स्वरलिपि थी, दो हृदय, जो कुछ समय पहले एक साथ धड़का करते थे, यह मानो उन्हीं की एक साथ एक ही ताल में स्पंदित होने के प्रयास की राम-कहानी थी।

जाड़ों की धूप में कुरसी डाल, उसपर बैठकर सुरमा इस चिट्ठी को बड़ी देर तक पढ़ती रही, अपनी सखी के रचना-कौशल के कारण ही अथवा अपने सूने जीवन के कारण, इस अपरिचित बच्चे के प्रति उसका मन स्नेह से पसीज गया। उस नन्हें से बच्चे को छाती से लिपटाकर उसके मुख पर सैकड़ों चुम्बन अंकित कर देने के लिए वह व्याकुल हो उठी। उसने बार-बार चिट्ठी पढ़ी, इसके बाद उसने अकस्मात् उसे दूर फेंक दिया। वह एकदम सड़क पर जा गिरी। फेंकते समय अत्यधिक जोर लगने के कारण सुरमा का बैलेंस नष्ट हो गया,

और उसकी कुरसी एक ओर होकर गिर पड़ी। पास ही कहीं बुढ़िया कहारिन प्रतिदिन के अभ्यासानुसार खर्राटे भर रही थी, उस समय वह एक बड़ा ही अच्छा एवं अद्भुत स्वप्न देख रही थी—उसका बहुत दिनों से लापता पति बम्बई से रुपयों की गठरी बाँधकर लौट आया है। उसके आनन्द का कोई वारापार नहीं था। इतने में अकस्मात् कुरसी गिरने के शब्द से वह चौंक पड़ी, और एकदम से चकपकाकर उठ खड़ी हुई। सुरमा इस बीच सम्हलकर फिर कुरसी पर बैठ गई थी।

कहारिन ने आँखें मलते हुए कहा—क्यों, क्या बात है? माँ जी, मैंने तो समझा कि भूडोल आ गया। यह कुरसी कैसे गिर पड़ी थी? तुम्हें कोई चोट तो नहीं आई?

'नहीं नहीं' कहकर सुरमा ने उँगलियों के इशारे से सड़क पर गिरी हुई चिट्ठी दिखा दी। बुढ़िया बात ठीक-ठीक समझ नहीं सकी, बड़बड़ाती हुई जीने से उतर गई, और सड़क पर से चिट्ठी उठा लाई। रास्ते में वह उसे छाती में चिपकाए हुए थी, मानो उसके हृदय की बात जानने की चेष्टा कर रही हो। उसने चिट्ठी लाकर सुरमा के हाथ में दे दी।

सुरमा ने इस पत्र के उत्तर में अपनी सखी को एक पूरा खर्रा भेजा, उसमें अपने एकान्त जीवन का थोड़ा-बहुत विवरण लिखा था।

अब वह इस कोटि तक पहुँच गई थी!

इसके पहले उसने किसी को कभी अपने दुःख की जानकारी नहीं होने दी थी, बल्कि उसके पत्र कानपुर शहर तथा उसके अधिवासियों के सरस और मनोरंजक विवरण से भरे होते थे जिससे पत्र पढ़ने पर यही पता चलता था कि उसकी लेखिका चैन की बंशी बजा रही है।

३

१९३० का सत्याग्रह-आन्दोलन वीर दर्प से आँधी की तरह ऊधम तथा प्रलय का-सा धक्का लेकर देश में आया। सारे देश में उथल-पुथल तथा प्रलयकांड का सूत्रपात हो गया। समस्त भारत का हृदय मानोनीचे ऊपर होने लगा। सुरमा रोज़ बैठकर देखा करती कि कितनी प्रभात-फेरियाँ राष्ट्रीय गाने गाती हुई झंडा लेकर जा रही हैं, जुलूस की स्वयं-सेविकाओं के मुख-मंडल एक अनिर्वचनीय द्युति से उद्भासित होते थे, जीवन की कला का रहस्य मानो उन्होंने अकस्मात् आविष्कृत कर लिया था। सुरमा के वैचित्र्यहीन निरानन्द जीवन में भी उनके उन्माद की एक तरङ्ग आकर टकराई, कुछ क्षण के लिये वह भी चंचल होकर झूमने लगी। स्वयंसेविकाएँ जब झुण्ड बाँधकर, उसके मकान के सामने की सड़क पर से, वायु को अपने गानों से मादक बनाती हुई चली जाती थीं, तब वह उन्हें बड़े ध्यान से देखती थी। देखते-देखते एक अज्ञात वेदना उसके हृदय में धधककर जल उठती थी, किसी बातका अत्यन्त दुःखद अभाव उसके प्राणों में काँटे की तरह खटकने लगता था, और वह व्यथा से बावली-सी-हो जाती थी। एक दिन उसने जोश

में आकर अपने तमाम विलायती कपड़े बाँट दिये, और खद्दर धारण कर लिया, किन्तु बस वहीं तक, न तो वह स्वयंसेविकाओं में भर्ती हुई, न जेल गई। हो सकता है कि उसका जोश सघन रहा हो, किन्तु वह सघनता उसके भीतर इस हद तक परिपक्वता को कभी नहीं पहुँच सकी कि वह विलायती कपड़ों की होली मनाती, या स्वयंसेविकाओं में नाम लिखाती, उसने विलायती कपड़े तो त्याग दिये, किन्तु उन्हें जलाया नहीं। स्वयंसेविकाओं के उत्साह को देखकर उसे ईर्ष्या हुई, किन्तु वह स्वयंसेविका नहीं बनी।

यही थी सुरमा।

अध्यापक मजूमदार का इस आन्दोलन से प्रभावित होना तो दूर रहा, वे शायद अपनी प्रयोगशाला में बैठे-बैठे इस आन्दोलन के अस्तित्व को भी नहीं ताड़ सके। कहते हैं कि इन दिनों वे किसी युगान्तरकारी आविष्कार की टोह में लगे हुए थे।

वैज्ञानिक की साधना जीवन के उत्कर्ष के लिये है, और वही जीवन से इतना दूर ?

१६३१ भी आया। उस समय देश में सत्याग्रह-आन्दोलन जगमगा रहा था, ब्रिटेन-सिंहासन के पाँव लड़खड़ा रहे थे। मालूम होता था— अब ब्रिटिश राज्य चला ही जायगा, किन्तु गया नहीं। कांग्रेस और सरकार में संधि हुई, विजय गर्व से हम देशभक्त जेल से लौट आये। देश ने उनको हाथों-हाथ उठा लिया। समग्र देश में विजय की एक तृप्ति तथा आनन्द की अंतर्धारा बह रही थी।

पर ब्रिटिश सिंह बैठा नहीं था। वह गुमसुम बैठे विचार कर रहा

था। उसके सोच-विचार का कोई ओरछोर नहीं था। अन्त में सोचते-सोचते उसका चेहरा फिर एक बार आशा से प्रदीप्त हो गया—अभी विजय तथा आनन्द की यह धारा देश की हड्डियों तक व्याप्त होकर उसको उल्लसित और कृतार्थ भी न कर पाई थी, तथा गांधी-इर्विन-संधिपत्र की स्याही अच्छी तरह सूखी भी न थी कि देश ने आश्चर्य-चकित तथा मर्माहत होकर सुना कि कानपुर के हिन्दू-मुसलमानों में चल गई, और खूब चल गई। देशभक्त लोग भूताविष्ट की तरह आतङ्क से अवाक् हो परस्पर मुख ताकने लगे—यह क्या? क्षण भर के अन्दर विजय, गर्व और साफल्य की तृप्ति के स्थान पर आत्म-दंशन तथा लज्जा की कालिमा देश के अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त हो गई। फलस्वरूप देश के हृदय पर जो निराशा का प्रवाह प्रवाहित हो गया, उससे एक ही निमेष में कर्म-शक्ति की हरियाली जलकर कोयला हो गई।

अध्यापक मजूमदार नित्य की भाँति कालेज चले गए थे, बुढ़िया कहारिन दो घंटे के लिये सोने की छुट्टी ले चुकी थी। सुरमा अन्य-मनस्क अवस्था में बँगला-मासिक पत्रिका की एक गल्प पढ़ रही थी, गल्प जगह पर पहुँच गई थी, जहाँ दिलचस्पी बढ़ रही थी। इतने में दूर से आँधी आने की-सी दबी हुई आवाज आने लगी, आकाश के कोने

कोने में दृष्टि दौड़ाने पर भी सुरमा को बादल का कोई टुकड़ा दृष्टिगोचर नहीं हुआ। निर्मेघ, नील-आकाश एक स्निग्ध दृष्टि से पृथ्वी की ओर देख रहा था। आवाज धीरे-धीरे निकट आने लगी, कुछ ही क्षण में सुरमा समझ गई कि यह आँधी का शोर नहीं है, विपुल जनसमागम का शब्द है। शोर के और भी निकट आने पर सुरमा समझ गई कि यह कांग्रेसियों के जुलूस की तरह कोई नियमित तथा सुसंयत भीड़ नहीं है। एक अज्ञात आशङ्का से वह सिहर उठी। तो क्या......? सुरमा ने बिना चिह्न लगाए ही अपने हाथ की मासिक-पत्रिका को बन्द कर दिया।

ज्वार के पानी की तरह भीड़ क्रमशः उमड़ती चली आ रही थी। जब भीड़ का कोलाहल स्पष्ट सुनाई देने लगा तब सुरमा ने ने खड़े होकर देखा कि कुछ दूर पर एक प्रकांड उन्मत्त भीड़ कुत्सित् चीत्कार करती हुई इस ओर आ रही है। वे क्या चिल्ला रहे हैं ? सुरमा ने विह्वल होकर उसे सुनने की चेष्टा की। केवल एक ही बात उसे स्पष्ट रूप से मालूम हुई कि वे गगनभेदी रूप से बार-बार "अल्लाहो अकबर" की ध्वनि कर रहे हैं। कांग्रेसी जुलूसों में भी तो यह नारा बुलन्द किया जाता है, किन्तु इसके साथ 'महात्मा गांधी की जय" आदि कहाँ है ? सुरमा प्रतीक्षा करने लगी।

देखते-देखते भीड़ लगभग मकान के सामने आ गई। सुरमा ने देखा कि भीड़ के कुछ लोग आस-पास के मकानों में तेज़ी से घुस रहे हैं। फौरन उसकी समझ में आ गया कि दाल में कुछ काला है। वह चिल्लाकर बुढ़िया को जगाने लगी, किन्तु आज मानों उसे साँप सूँघ गया हो, उधर भीड़ बराबर उमड़ी हुई इधर ही को आ रही थी। सुरमा

ने तब खड़े ही खड़े उस बुढ़िया पर फट से एक लात जमा दी।

—मर कहीं की, यहाँ नींद नहीं टूटती, और वहाँ मकान में डाका पड़ रहा है।

बुढ़िया भौंचक्की होकर उठ खड़ी हुई, मिनट भर के अन्दर ही वह सारी परिस्थिति समझ गई।

सचमुच उस समय मकान के बड़े दरवाजे पर बड़े जोरों का धमाका मच रहा था, और बीच-बीच में गगन-भेदी रव से "अल्लाहो अकबर" सुनाई पड़ता था। कसाई की छुरी के सामने लाये गये बकरे की भाँति बुढ़िया उस समय थर-थर काँप रही थी। भीड़ का मुख्य भाग उस समय मकान के आगे बढ़ चुका था, किन्तु कई सौ आदमियों की टुकड़ी मुहल्ले के मुसलमानों के साथ मिलकर हिन्दू-घरों को लूटने में दत्तचित्त थी। इस मुहल्ले में हिन्दुओं की संख्या दाल में नमक के बराबर भी न थी।

सुरमा दौड़कर अपने कमरे में चली गई, और वहाँ भीतर से सिटकनी चढ़ाकर किवाड़ के सामने खाट आदि लगाकर किलेबन्दी करके बैठ गई। उसके हृदय में धमा-चौकड़ी मच रही थी, एक भयंकर भविष्य का चित्र उसकी कल्पना की आँखों के सम्मुख एक नङ्गी तलवार की तरह नाचने लगा।

बुढ़िया 'न ययौ न तस्थौ' अवस्था में जहाँ थी वहीं खड़ी रही, वह लकवा से ग्रस्त चिड़िया की भाँति हो रही थी, आनेवाली विपत्ति से परित्राण का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था।

झनझनाहट के साथ प्रबल ज्वार के सम्मुख कमज़ोर बाँध की भाँति बड़ा दरवाज़ा गिर गया। इतने दैत्यों के समवेत आक्रमण का प्रतिरोध करने की शक्ति इस लक्कड़ में नहीं थी, कदाचित् इस उद्देश्य से उसकी सृष्टि भी नहीं हुई थी। चालीस-पचास मुसलमान तुरन्त गिल्हरी की तरह चपलता से जीने से ऊपर चले आये। दूसरे लोग दरवाज़ा टूटा हुआ देखकर आगे के मकानों को लूटाने के लिये खिसक गये।

जो लोग दो-मंज़िले में आए, उनमें से एक ने आकर अकारण ही बुढ़िया को ज़ोर का तमाचा लगा दिया, और दूसरे ने उसके बालों को पकड़ लिया—वे बाल जो प्रायः सफेद हो चुके थे। बुढ़िया जोर से चिल्ला उठी, और आततायियों के पुरखों को गालियाँ देने लगी। भीड़ में से एक नौजवान हाथ में छुरा लेकर उसकी ओर झपटा।

छुरावाले नौजवान को पुकारकर टोली में से एक युवक बोल उठा—मार डालो इस काफिर की बच्ची को .....।

फिर क्या था, छुरा उठा, और वह चल भी गया होता यदि अचानक भीड़ में से एक भद्र चेहरेवाला युवक बीच-बचाव करने के लिये आगे लपककर छुरा न थाम लेता।

बुढ़िया छुरा देखकर एकदम चुप्पी साध गई, वह समझ गई कि दुनिया ही दूसरी है, इन लोगों के निकट विवेक नामक कोई पदार्थ नहीं है, तथा इनके निकट किसी के जीवन का मूल्य एक फूटी कौड़ी भी नहीं है।

भद्र आकृतिवाले युवक ने बुढ़िया के चारों ओर के मजमे को

सम्बोधित कर कहा—जाने दो, बूढ़ी है। इसके बाद बुढ़िया से पूछा—तेरी बेटी कहाँ है।

—मेरी बेटी! मेरी कोई बेटी नहीं है।

बुढ़िया को समझने में देर नहीं हुई कि यह प्रश्न किसके सम्बन्ध में है। वह हड्डी तक चौंक गई। एक भयंकर भाषातीत भय से उसका देह-मन अभिभूत हो गया।

युवक ने बुढ़िया से प्रश्न किया, इस बार जरा तैश में आकर—क्यों यहाँ वह जो छोकरी बैठी रहती थी, उसे कहाँ छिपा रक्खा है।

किंतु उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह युवक बुढ़िया को अपने साथियों के साथ छोड़कर मकान की तलाशी लेने लगा। साथ-साथ मजमा भी गया, भीड़ के आखिरी मनुष्य ने जब बुढ़िया के बालों को छोड़ दिया तो उसने दक्षिणा के रूप में उसे एक तमाचा जड़ दिया। बुढ़िया ने तजर्बे से सबक सीख लिया था, इसलिये पहले की तरह चिल्ला नहीं पड़ी। विशेषकर इस बार उसे कुछ अधिक चोट भी नहीं आई थी, क्योंकि जिसने उसपर यह आखिरी तमाचा जड़ा था, उसकी उम्र मुश्किल से तेरह साल की होगी। अभी उसकी मसें भीनी भी न थीं, प्रायः दुधमुँहा बच्चा-सा दीखता था। बच्चे का चेहरा देखकर यह मालूम हो रहा था कि, वह इस डकैती और लूट को एक नया खेल-सा समझ रहा था, जिसमें उसके बड़े भी शामिल हैं, और कुछ भी नहीं। बेचारा, गुमराह!

जिधर के कमरे में सुरमा ने अपने को बन्द कर रक्खा था, उधर से किवाड़ तोड़ने का धमाका आ रहा था। बुढ़िया बेचारी क्या करती वह वहीं चुपचाप खड़ी, कान लगा कर, सुनती रही। वह कर्णेन्द्रिय

की सहायता से सारी घटना का अनुसरण करने की चेष्टा करने लगी। थोड़ी ही देर में एक भारी धड़ाके के साथ लकड़ी का किवाड़ टूटकर गिर पड़ा, उसके साथ-ही साथ सुरमा का हृदय-विदारक आर्तनाद भी था मानो कोई उसका गला घोंट रहा हो। एक जंगली जानवर की भाँति उसका विलाप बड़ी देर तक वातावरण में तैरने लगा, बुढ़िया का हृदय मानो बैठा जा रहा था। इसके बाद सब शांत हो गया। केवल बीच-बीच में डकैतों की अकारण "मारो मारो" आवाज़ सुन पड़ रही थी।

बुढ़िया समझ गई, क्या है......।

इस प्रकार कदाचित् कई मिनट ही बीते होंगे कि इतने में बाहर अकस्मात् गोली चलने की आवाज़ सुन पड़ी। आक्रमण-कारियों का दल गोली चलने की आवाज़ सुनकर भय से अभिभूत हो गया, और "पुलिस पुलिस" कहते हुए जिधर जो भाग पाया, भागने लगा। पूरी भगदड़ मच गई। बुढ़िया के सामने से डकैत लोग जीने से उतरने लगे, किंतु इस बार उन्होंने बुढ़िया की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस समय वे भागने में दत्तचित्त हो रहे थे। अपनी संपूर्ण कर्मशक्ति को उन लोगों ने उस समय टाँगों में केंद्रीभूत कर रक्खा था। सबके हाथ में कुछ-न-कुछ लूट का सामान मौजूद था, किसी के हाथ में कोट, किसी के हाथ में साड़ी, किसी के हाथ कुछ नहीं तो एकाध बर्तन; जिसके हाथ में जो कुछ लग गया। केवल उस भद्र आकृतिवाले युवक के हाथ में कुछ नहीं था। और वह तेरह वर्ष की आयु का लड़का जिसने जाते समय बुढ़िया पर एक तमाचा जड़ा था, वह खेलने के लिये एक बड़ा कुत्ता बगल में दबाए भाग रहा था। यह कुत्ता उसी प्रकार

का था, जिसके सिर पर धौल जमाने से भूँकने की-सी आवाज़ देता है।

बुढ़िया जब निःसंदेह रूप से समझ गई कि डकैत चले गए हैं, तब वह डरते-डरते सुरमा की खोज करने के लिये निकली। रास्ते में सैकड़ों चीजें टूटी-फूटी, मरोड़ी, और फैली अवस्था में पड़ी हुई थीं, मानो एक प्रचंड भूचाल ने आकर सब उथलपुथल और विपर्यस्त कर दिया हो। यह देखकर बुढ़िया का रोना-सा आने लगा, किंतु इन सब छोटी-मोटी चीजों के लिये शोक मनाने का अवसर उस समय नहीं था। वह जल्दी से कमरे में घुसी, वहाँ पर उसने देखा कि, एक प्रलयकांड-सा हुआ पड़ा है। दीवार में जड़े हुए बड़े-बड़े दर्पणों को मानो किसी ने वज्रमुष्टि से चकनाचूर कर दिया था, जिस मूल्यवान पलँग पर अध्यापक मजूमदार तथा सुरमा लेटा करती थी, वह मानो किसी अशुभ मंत्र के प्रभाव से एक लोहालक्कड़ के खँडहर में परिणत हो गया था, और इन सब नामहीन, जातिहीन लकड़ी और काँच के टुकड़ों की विशृंखला में उन्हीं के बीच मानो उनके साथ समंजस्य रखती हुई सुरमा प्रायः नंगी अवस्था में फर्श पर पड़ी है। वह हिलडुल नहीं रही थी, मानो वह भी आस-पास के पदार्थों की तरह कोई जड़ पदार्थ हो।

बुढ़िया ने पहले सुरमा को मरी हुई ही समझ लिया, किंतु उसकी छाती पर हाथ रखते ही उसका यह भ्रम दूर हो गया, क्योंकि साँस अभी चल रही थी। सब परिस्थितियों को तौलकर उसे इस सिद्धांत पर पहुँचने में देर न हुई कि सुरमा के साथ बलात्कार किया गया है, और इसी सिलसिले में आत्म-रक्षा करती हुई शायद वह बेसुध भी हो गई है। कौन जानता है, कितनों ने उस पर पाशविक अत्याचार किया है?

बुढ़िया के माथे पर बल आ गया। उसका हृदय भीतर ही भीतर कह उठा—इससे तो उसकी मृत्यु हो गई होती, तो वह कहीं अच्छा होता।

एक बार उसकी इच्छा हुई कि डाक्टर को बुला लावे, और बाबू को खबर दे, किंतु उस समय भी दूर पर शोर सुनाई पड़ रहा था, जिससे स्पष्ट था कि दंगा अभी पूरे जोर से जारी था, इसलिये उसने बाहर न जाने में ही अपनी भलाई समझी। यह बात सच है कि वह अपने यौवन की मंजिल को बहुत पीछे छोड़ आई है, नहीं, उसको इस प्रकार का कोई भय न था, किंतु ये मुए गुण्डे उसे दूसरे प्रकारों से अपमानित करने में कुछ कोर-कसर नहीं रक्खेंगे—इसमें तो कोई संदेह नहीं था। और डाक्टर को बुलाने से ही क्या लाभ? जो हो चुका, उसे वह हटा तो सकता ही नहीं। रहे बाबूजी, उनको बुलाना ही बेकार है, वे कदाचित् घबड़ाकर कोई नया गुल न खिलावें। इससे उसने घर पर रहकर घर को ठीक करने में ही अपनी शक्ति लगाना उत्तम समझा। इसके अतिरिक्त उसे इस बीच में बहुतसी गुत्थियाँ सुलझानी थीं, बहुतसी।

वास्तव में सुषमा बेहोश नहीं हुई थी। वह केवल हक्कीबक्की हो गई थी, उसके मन पर प्रचंड धक्का लगा था। आँखों में तथा मुँह पर जल के दो-चार छींटे देते ही वह आँखें खोलकर देखने लगी, किंतु बुढ़िया के सैकड़ों मनौती करने पर भी उसने किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। एक अर्थहीन शून्य दृष्टि से वह छत की ओर देखने लगी तो बड़ी देर तक उधर ही देखती रह गई, किसी दूसरी ओर उसने दृष्टि नहीं की।

बुढ़िया ने जब देखा कि सुरमा बोल नहीं पाती या बोलना नहीं चाहती, तो उसने उसकी साड़ी आदि बदलकर उसे जहाँ तक हो सका साफ-सुथरे बिस्तरे पर लिटा दिया, और उसके बाद नष्ट-भ्रष्ट किये हुए घर को सजाने लगी। चीजों को तो वह हाथों से सजाने लगी, किन्तु उसका मन एकदम दूसरी ही ओर लगा था, वह मन ही मन एक गुत्थीदार समस्या को सुलझा रही थी। वह सोच रही थी—बाबू को इस मामले का कितना अंश बताया जाय। क्या वह बलात्कार की बात बाबू को बतावे, या उसे एकदम से पी जाय? इस विषय पर बाबू के आने के पहले ही माँ जी के साथ समझौता हो जाता तो अच्छा रहता। उसने इसके पहले अपने जीवन में बहुत बड़े-बड़े घरों में नौकरी की है, किसी गुप्त बात को किस प्रकार दबाया जाता है वह यह भली भाँति जानती है, अनेक बार उसको इस सम्बन्ध में अपनी योग्यता की परीक्षा देनी पड़ी है। यह तो कुछ भी नहीं है, इसमें सुरमा का तो कोई दोष नहीं है, किंतु उन सब क्षेत्रों में जहाँ जान-बूझकर पापाचरण किया गया है, वहाँ पर भी वह उन बातों को पी गई थी। अपनी इस योग्यता का स्मरण होते ही बुढ़िया गौरव की भावना से पुलकित हो उठी, उसको इस बात पर गर्व था।

बुढ़िया दार्शनिक नहीं थी, किसी विषय पर गम्भीरता के साथ विचार करना उसका स्वभाव नहीं था, फिर भी उसने मन ही मन आश्चर्य के साथ इस बात को महसूस किया कि समाज की आँखों में एक स्त्री, जिस पर बलात्कार किया गया है, इच्छापूर्वक गुप्त व्यभिचार करनेवाली स्त्री से अधिक घृणित समझी जाती है, यद्यपि पहली अवस्था

में नैतिक जिम्मेदारी किसी प्रकार उस पर नहीं लादी जा सकती।

वह सुरमा से अन्तिम बार बात कराने की इच्छा से उसके कमरे में गई, किंतु उसको बुलवाने में समर्थ नहीं हुई। बुढ़िया उसे एक करुण तथा तीव्र दृष्टि से देखने लगी। क्या सुरमा भी उसी बात की उधेड़बुन में लगी हुई थी, जिस सोच में वह पड़ी हुई थी? कौन जानता है? बुढ़िया ने जब देखा कि सुरमा नहीं बोलेगी, तब उसने अपने मन में इस सम्बन्ध में एक सिद्धांत स्थिर कर लिया, और फिर घर को सजाने की चेष्टा करने लगी।

काम करते-करते बुढ़िया सब घटनाओं को मन-ही-मन विचार करने लगी। अपने ऊपर लगे हुए तमाचे तथा केशाकर्षक आदि घटनाओं को विस्मृत हो उसके मस्तिष्क में एक ही बात बार-बार चक्कर काट रही थी। वह था सुरमा का हृदय-विदारक आर्तनाद। मानों उसके कानों में अभी तक वह हृदय-विद्रारक नाद गूँज रहा था, वह विलाप अभी तक घर की दीवारों तथा खम्भों से टकरा-टकराकर ध्वनित हो रहा था, बुढ़िया ज़रा सतर्क होते ही उस कराह को सुन सकती थी। उसको उस भद्र चेहरेवाले युवक की याद आई, न मालूम क्यों उसे यह भासित होने लगा कि यही दुरात्मा है जिसने......। हाँ, यही वह है। उसी ने न उससे पूछा था—तेरी बेटी कहाँ है। ओः, तो पहले ही से वह दुष्ट यही उद्देश्य लेकर आया था। हाँ, ठीक है, वह केवल यही पाशविक उद्देश्य लेकर आया था, बुढ़िया को याद आया कि भागते समय उसके हाथ में कोई लूट का माल नहीं था।

बुढ़िया का चिंता-सूत्र यहाँ पर टूट गया, क्योंकि पड़ोस के एक हिंदू

सज्जन इस परिवार पर क्या बीता है यह पता लगाने आये थे। हिंदू सज्जन के प्रश्न के उत्तर में बुढ़िया ने यह तो कह दिया कि मुए डाकू गहना-गुड़िया सब ले गये, यहाँ तक कि कपड़े-लत्ते भी नहीं छोड़े। अपने ऊपर लगे हुए तमाचे तथा अपने बाल पकड़े जाने की बात भी उसने कही, किंतु बस, और कुछ भी न कहा। पड़ोसी सज्जन कुछ आश्वस्त होकर चले गये, क्योंकि उस दिन मुहल्ले के अन्य हिंदू-घरों पर जैसी गाज गिरी थी, उसकी तुलना में इस घर की हानि कुछ भी नहीं मालूम हुई। किसी-किसी मकान में तीन-तीन लाशें पड़ी थीं, इसके अतिरिक्त दो एक में आग भी धधक रही थी। मुहल्ले के मन्दिर की जो अवस्था हुई थी, उसे न लिखना ही अच्छा होगा। यद्यपि मेरे कथानक के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी न्याय का तकाजा है कि इतना कह दिया जाय कि हिंदू-प्रधान मुहल्लों में मुसलमानों की भी ऐसी ही बुरी गति हुई थी। उनका व्यवहार भी ऐसा ही पशुतापूर्ण था।

अध्यापक मजूमदार उस दिन दूसरे दिनों से भी देर में कालेज से लौटे। आज कदाचित् भाड़े का टाँगा नहीं मिल सका था, इसलिये उन्हें पैदल आना पड़ा था। बुढ़िया देखकर आश्चर्य से अवाक् रह गई कि इस प्रकार एक भयंकर दंगा कानपुर की छाती पर मूँग दलकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर, एक आँधी की तरह बह गया, किंतु अध्यापक के चेहरे पर तनिक मटमैलापन तक तो था ही नहीं। होता कैसे? सबेरे से तो वे कालेज की प्रयोगशाला में जुटे हुए थे, इसके अतिरिक्त कालेज जिस ओर था कानपुर के उस भाग में दंगा विशेष ज़ोर पर नहीं था।

मकान की विध्वस्त हालत को देख तथा बुढ़िया की बातें सुनकर, उनकी आँखों में प्रयोगशाला की जो स्वप्निल मादकता छाई हुई थी, वह हट गई, वास्तविकता के प्रति वे अकस्मात् सजग हो गये। वह केवल विशेषकर अपनी वैयक्तिक हानि तथा सुरमा की अवस्था देखकर दुखी हुए, यह बात नहीं, उनका दुःख विशेषकर इस कारण से हुआ कि उन्होंने अनुभव किया कि विज्ञान की जटिलता तथा रहस्यमयता ही एक बाधा नहीं है, बल्कि मनुष्य भी हठ तथा दुर्बुद्धि से प्रेरित होकर बारंबार उनकी जययात्रा को कुंठित कर रहा है।

एक डाक्टर बुलाए गए, बड़ी देर तक सुरमा की नाड़ी-परीक्षा करने के बाद उन्होंने राय दी—कुछ नहीं, Shock लगा है, अभी अच्छा हुआ जाता है।

उन्होंने एक इंजेक्शन दिया, और जाते समय कह गए कि एक मिक्सचर भी भेजेंगे।

सुरमा ने उस रात में पानी भी नहीं माँगा। जिस करवट पर लेटी, उसी करवट लेटी रह गई। दवा पिलाते समय चिल्लाया जाता, तब कहीं यंत्र की भाँति मुख खोल देती थी और दवा पीकर पुनः पहले की सी उदासीन स्थिर मुद्रा में लेट जाती थी मानो किसी अर्थी पर मुर्दा रक्खा हो। केवल उसकी दोनों आँखें निर्निमेष दृष्टि से छत की ओर निहार रही थीं, बुढ़िया रात भर बराबर उसके सिरहाने डटी रही। हाथ में एक पुस्तक लिए हुए अध्यापक भी पास में बैठे रहे। रात के अंतिम भाग में सभी सो गए। बुढ़िया खुर्राटे भरने लगी।

सुरमा नींद में अपनी सब ग्लानि, दुख तथा लज्जा भूल गई। उसने

स्वप्न देखा, मानों उसके एक नन्हा-सा बच्चा हुआ है उस बच्चे का मुख किसके समान है—इसकी कल्पना करके भी वह स्मरण नहीं कर पा रही है। उसने बच्चे को प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया। इस स्वप्न को उसने कुछ परिवर्तन के साथ कई बार देखा।

दूसरे दिन सवेरे सुरमा प्रति दिन की अपेक्षा देर में उठी। किंतु प्रति दिन की भाँति नीचे की मंज़िल में रसोई-घर में जाकर रसोइये छोकरे से यह नहीं कहा कि ऐसा बना वैसा बना। वह सीधे गुसलखाने में घुस गई और किवाड़े बंद कर लिये। वहाँ से वह बड़ी देर में निकली, फिर वह पाठागार में घुस गई। अध्यापक वहाँ पर पहले से ही मौजूद थे।

किसी प्रकार की भूमिका न बाँधकर सुरमा बोली—सुनते हो?

किताब से मुँह उठाकर अध्यापक ने कहा—हाँ......।

—एक बात कहनी है।

अध्यापक स्त्री का यह गंभीर भाव देखकर कुछ आश्चर्यित हो गये, बल्कि उन्हें कुछ भय भी हुआ। उन्होंने यंत्रचालित की भाँति कहा—वह क्या?

सुरमा ज़रा सिटपिटाई। उसका गला मानो सूखा जा रहा था। इसके पश्चात् इच्छा-शक्ति के प्रबल प्रयास द्वारा वह ज़मीन की ओर देखती हुई बोली—कल गुण्डों में से एक ने मुझ पर बलात्कार किया था।

वह और भी कुछ कहने जा रही थी, किंतु अत्यधिक भावावेश के कारण उसके मुख से बातें न निकल सकीं। किंतु जितनी भी बातें उसने

कहीं, उन्हें बहुत ही स्थिर होकर कहीं, मानों बराबर उसने उन बातों का रिहर्सल किया हो। उसकी जिह्वा जिन बातों को गुप्त रखना चाहती थी उन्हें उसकी आँखों ने प्रगट कर दिया। उसकी आँखों से आँसुओं की कुछ बूँदें टपककर उसके कपोल पर आ गईं।

अध्यापक के हाथ से पुस्तक जोर से गिर पड़ी, वे तनकर सीधे खड़े हो गए। इसके उत्तर में जैसे उनको कोई बात ही नहीं सूझी, उन्होंने कहा—बुढ़िया ने तो ऐसी कोई बात नहीं कही......।

अध्यापक तनिक हाँफ रहे थे।

वह शायद नहीं जानती, उसको कदाचित् गुण्डों ने बाँध रक्खा हो—सुरमा ने बड़े ही स्पष्ट स्वर में कहा।

अध्यापक मजूमदार धम से कुरसी पर बैठ गये, उन्होंने कहा—यह भी तो हो सकता है कि कुछ भी नहीं हुआ, इतने आदमियों ने मिलकर मकान पर चढ़ाई की, इससे शायद तुम इस बात की कल्पना कर रही हो। ऐसा होता है, मनोविज्ञान की पुस्तकों में इसके टोकरियों उदाहरण भरे पड़े हैं।

अध्यापक मजूमदार ने जो यह बात कही, उनके दिल की बात नहीं थी, वे केवल इस घटना को अस्वीकार कर उसको मानने से जो उलझनें पैदा होती हैं उनसे बचना चाहते थे। अवश्य, साथ ही वे यह चाहते थे कि यह अस्वीकार सुरमा की ओर से ही हो। इस घटना को स्वीकार करने का अर्थ है बहुत सी गुत्थियों में फँसना, इसके फलस्वरूप जो अशांति की आँधी उनके जीवन में प्रविष्ट होती, उसका सामना

करने के लिये वे तैयार न थे। वे बड़ी दुविधा में पड़कर हाथ मलने लगे।

कोई भी स्त्री पति की यह मनोवृत्ति समझकर इस अद्भुत घटना पर सदा के लिये पर्दा डाल देती, किंतु सुरमा ने उस रास्ते पर पैर भी न रक्खा। बल्कि उसने रूक्षता से कहा—नहीं, नहीं, भूल नहीं हुई, जो कहती हूँ वह ठीक है······।

जिस प्रकार मछली अनायास जल में विचरण करती है, उसी प्रकार अनायास विचरण करनेवाले अध्यापक इस बात से बड़ी दुविधा में पड़ गये। ऐसी कठिन उलझन में मनुष्य फँस सकता है यह उनकी धारणा न थी। वे सिर खुजलाते हुए बोले—जो हो चुका वह तो हो चुका, अब इस बात को तूलतवील न देने में ही भलाई है, ऐसा करने से किसी का फायदा नहीं है।···

उनकी स्त्री ने इस सम्बन्ध में सचाई से काम लिया है, इस बात से वे स्त्री से संतुष्ट न हो सके, बल्कि इस मामले में सत्य को दबा रखने में ही सब तरह से भलाई थी, यह सोचकर उनका मन पश्चात्ताप से परिपूर्ण हो उठा। उनकी स्त्री ने इस घटना से उत्पन्न स्वर्ण-संयोग को काम में लाने से एकदम अस्वीकार कर दिया, और इस तरह वह बड़ी रुखाई से इस अप्रिय सत्य को उनके सामने कह गई। इससे वे बहुत कुढ़े और यह कुढ़न आगे चलकर क्रोध के रूप में बदल गई।

सुरमा अपने पति को परेशानी में डालकर पहले ही कमरे से चली गई थी।

बाहर से घर-गृहस्थी का काम सब वैसे ही चलने लगा, किंतु पति-पत्नी में जो मेल था, उसमें गाँठ पड़ गई। उनके हृदय में अब एक व्यवधान की सृष्टि हो चुकी थी, जिसको मिटाना कठिन था, किंतु समय सब कुछ कर सकता है।

५

दंगे के बाद दो महीने बीत चुके हैं। बाहरी रूप से दंगे की अराजकता स्वप्न हो गई, और नगर के कामकाज सब पुराने ढंग पर चलने लगे, फिर भी भीतर-ही-भीतर दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे का अविश्वास करते थे, और यह बात एक नासूर की तरह दोनों सम्प्रदायों के मन और शरीरों को कुतर रही थी। सवेरा होते ही मिलें फिर तेज आवाज़ से कुलियों को इकट्ठा करने लगीं। गाड़ी, घोड़े, मोटर उसी भाँति म्युनिसिपलिटी के रास्तों पर विचरण करने लगीं। जो लोग दंगे के कारण शहर छोड़कर दिहात में भाग गये थे, उनमें भी बहुत कुछ लौट आए।

किंतु लौटा नहीं तो केवल हिन्दू-मुसलमानों का पहला मेल-भाव।

अपनी तू-तू मैं-मैं के कारण इस समय जनता में सम्प्रदायवादियों की तूती बोल रही थी, जनता में साम्प्रदायिक एका कर उनको स्वत-

ध्यान कराने वालों की भौं-भौं किसीको नहीं भाती थी। वे स्वप्नलोक में विचरण करनेवाले समझे जा रहे थे, उनकी बातों का वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं है, जहाँ-तहाँ यह सुन पड़ने लगा था। लोग केवल निकट के स्वार्थ को ही देख पा रहे थे, अर्थात् उसीको बड़ा करके देख रहे थे। सम्प्रदायों में एकता के नारे देने वालों पर से जनता की श्रद्धा एकदम काफ़ूर हो गई थी, लोग उनकी सुस्त तथा लीपापोती की नीति को ही इस दंगे का कारण करार दे रहे थे!

अध्यापक मजूमदार दंगे के मामले में कुछ देर के लिये तो अपना भारसाम्य खो बैठे, किंतु पारिवारिक अशांति के होते हुए भी उन्होंने शीघ्र ही अपनी वैज्ञानिक निस्पृहता वापस पाली। कालेज के लड़कों में पड़कर उन्होंने हिंदू-मुसलमान-समस्या की गुरुता तो उपलब्धि कर लिया, किंतु इस समस्या का समाधान छोटी विभूतियों (Lesser brains) पर छोड़कर वे फिर विज्ञान की साधना में दत्तचित्त हो गए।

अध्यापक मजूमदार आरामकुर्सी पर बैठकर बड़ी तन्मयता से जर्मन भाषा की एक वैज्ञानिक पत्रिका पढ़ रहे थे, और बीच-बीच में एक नोटबुक पर कुछ लिख रहे थे। वे बिल्कुल सजग थे, किंतु बाहरी दुनिया के प्रति नहीं, पत्रिका के प्रति। यह उनके लिये बड़े आनंद का समय है, कोई भी आकर ऐसे समय उनको परेशान नहीं करता, इसलिए आज जब सुरमा अप्रत्याशित रूप से आकर उनके सामनेवाले मोढ़े पर बैठ गई, तब उन्होंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से मुँह बनाया। दंगे के बाद से पति-पत्नी में सद्भाव नहीं था; एक साथ खाने-पीने, सोने-बैठने पर भी उनके बीच

का सम्बन्ध शुष्क तथा समयानुकूल बातचीत तक ही सीमित था। पहले यह वैज्ञानिक कभी-कभी पति ही नहीं प्रिय-तम का रूप भी धारण करते थे, किंतु दंगे के बाद से वे एक दूसरे से दूर ही रहना पसंद करते थे।

सुरमा बहुत कुछ सोच-समझ के बाद तैयार होकर आई थी, किंतु पति की रूखी चितवन की आकस्मिकता से उसकी सारी बुद्धि तिलमिला उठी। वह घबड़ाकर कह उठी—क्यों, क्या कुछ अपराध हो गया, जो मैं यहाँ आकर बैठ गई ?

क्या वह कहने जा रही थी, और क्या वह कह गई ? वह अपने प्रश्न से स्वयं ही अवाक् रह गई।

—क्या, मैंने ऐसा कहा ?—चिर-अभ्यस्त प्रशान्त स्वर में अध्यापक मजूमदार बोले। उनका मन उस समय भी आंशिक रूप से पठित विषय की जुगाली करने में लगा हुआ था। जीवन की छोटी-मोटी नीची सतह पर वे कठिनता से उतर पाते थे।

—कहो, चाहे न कहो, इससे कुछ होता जाता है नहीं—झगड़े के स्वर में सुरमा ने कहा। वह और भी कुछ कहने जा रही थी, किंतु ठहर गई, मानो शक्ति-संचय के लिये ठहरी हो। अध्यापक जानते थे कि सुरमा इन दिनों कुछ चिड़चिड़े स्वभाव की हो रही है, किंतु उन्होंने भी इतनी कल्पना नहीं कर पाई थी कि, वह इस तरह माँगकर सब आदमियों में उनके साथ (of all the men) झगड़ा मोल लेगी। हाथ की पत्रिका को बन्द कर वे सम्हलकर बैठ गए।

सुरमा ने उन्हें सोचने का अवसर न दिया। वह कहने लगी, किन्तु इस बार उसका स्वर गम्भीर था, वह झगड़े की प्रवृत्ति क्षणभर में उसके स्वर से जा चुकी थी।

—मैं तुम्हें यह बात बताने आई हूँ कि मैं गर्भवती हूँ, और मेरे गर्भ में जो संतान है, वह तुम्हारी नहीं है!

यदि अध्यापक के सिर पर एक साथ सौ वज्र भी गिरते, तो भी उन्हें इतना आश्चर्य न होता। वे उत्तेजना के मारे उठकर खड़े हो गए। पत्रिका जमीन पर गिर पड़ी, और उसका एक पन्ना खुल गया, जिस पर एक जटिल नकशा बना हुआ था। अध्यापक की साँस मानों रुकी जा रही थी। सुरमा निस्पंद प्रस्तर मूर्तिवत् मूढ़े पर बैठी थी उसकी आँखों की पलकें भी मानों बन्द हो हिलना-डुलना भूल गई थीं।

अध्यापक मजूमदार पहले तो बात को ठीक-ठीक समझ नहीं पाए, किंतु धीरे-धीरे वे इस बात को हृदयंगम करने लगे, उसका अर्थ धीरे-धीरे उन पर खुलने लगा और उसकी रूखी भीषणता उनके निकट स्पष्ट हो गई। वे जितना ही इस मामले में पैठने लगे, उतना ही हत-बुद्धि होने लगे। उन्होंने कभी सुरमा पर अखंड अधिकार की माँग नहीं की थी, अपने परिचित बहुत से पतियों की भाँति वे अपनी पत्नी के चाल-चलन तथा गति-विधि पर कोई संदिग्ध या सतर्क दृष्टि नहीं रखते थे; नहीं, नहीं, वे इन सब क्षुद्रताओं से बहुत परे थे। वे अपनी सुरमा की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखते आए थे, उसकी स्वाधीनता अप्रतिहत थी। वे इस बात का अनुभव करते थे कि विज्ञान की सेवा की धुन में उन्होंने सुरमा की अवहेलना की है, किंतु क्या उसी अर्थ

में उन्होंने अपनी अवहेलना और भी ज्यादा नहीं की ? जिस दृष्टि से सुरमा बुभुक्षिता तथा उपवास-क्लिष्टा थी, क्या उसी दृष्टिकोण से वे और भी दयनीय दशा में नहीं थे ? वर्षों पहले जब से उनपर गवेषणा करने का भूत सवार हुआ था, तब से उन्होंने इस विपुला पृथ्वी की ओर अच्छी तरह आँखें उठाकर देखा भी नहीं। सुरमा के सम्बन्ध में उनका विवेक बिलकुल स्पष्ट था, किसी प्रकार की व्यथा का मरोड़ उसमें नहीं था।

अध्यापक मजूमदार ने इस बात को और भी गहराई तक समझने की चेष्टा की—आखिर यह बात हुई कैसे ? वह पुरुष कौन-सा था ? उनकी जान में तो सुरमा का कोई प्रेमिक नहीं था, फिर यह बिना मेघ के वज्रपात कैसा ?

अकस्मात् उनको दंगे के समय की उस घटना का स्मरण हो आया। एक मिनट में उनके निकट सारी ग्रंथियाँ सुलझकर स्पष्ट हो गईं।......प्रेमिक नहीं, बल्कि बलात्कार। इस प्रकाश के पड़ने से घटना की जटिलता बढ़ी, या घटी ? सुरमा का भला इसमें दोष क्या है ? वह तो केवल इस मामले में एक अपरिसीम तथा अदृष्टपूर्व दुर्भाग्य की शिकार हुई है। स्वेच्छा से हो या अनिच्छा से, माना कि इसमें सुरमा की कोई जिम्मेदारी नहीं थी, किंतु उसमें वास्तविकता की कर्कशता का तनिक भी ह्रास नहीं होता। समाज के हाट में यह तर्क चल नहीं सकता, उसकी अदालत में यह नज़ीर दिखलाकर कोई रिहा नहीं हो सकता। और वह बच्चा ? तो क्या वे उस असभ्य बर्बर नरपशु की संतान को अपनी संतान कहकर स्वीकार कर लें ? इतनी बड़ी समस्या का यह बड़ा

ही सस्ता समाधान है, इसमें संदेह नहीं, इस समाधान को यदि वे स्वीकार कर लें, तो उनकी शांति में ज़रा भी अन्तर न आवेगा, इच्छानुसार वे अपनी साधना को जारी रख सकते हैं, किंतु इस समाधान की चिंता मात्र से उनके हृदय तथा बुद्धि में खलबली मच गई। उनको प्रतीत हुआ कि इस समाधान में कहीं कापुरुषता की गंध आ रही है। न, न, न, यह नहीं हो सकता। सौ बार नहीं। फिर? हाँ, एक रास्ता है। रास्ता है जरा उलझनदार, हो, बला से। क्या किया जाय? सुरमा को वही बताया जाय। शायद राज़ी हो जाय। तो इस सम्बन्ध में इससे अच्छा समाधान हो ही क्या सकता है? सुरमा सुने तो अच्छी बात है, नहीं तो उनकी नैतिक जिम्मेदारी यहीं समाप्त है।

अध्यापक ने मन-ही-मन इन बातों को क्षण भर में सोच लिया, फिर वे गम्भीर स्वर में बोले—तुम इस मामले में एक अनहोनी और अन-सुनी क़िस्मत की शिकार हुई हो, कहना न होगा कि इस मामले में तुम्हारे साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है, पति की हैसियत से भी और मनुष्य की हैसियत से भी अपने समस्त वैज्ञानिक कौशल तथा रासाय-निक ज्ञान से मैं तुम्हें इस जटिल अवस्था से उबारने को तैयार हूँ, यद्यपि......।

बोलते-बोलते वे रुक गये। सुरमा जिस प्रकार बैठी थी, उसी प्रकार निस्पंद जड़ की तरह सिकुड़ कर बैठी रही। उसके मुँह को देखकर यह जरा भी नहीं मालूम होता था कि उसने अध्यापक की सारी बातें सुनी भी हैं या नहीं। अध्यापक को प्रतीत हुआ कि सुरमा अपनी परिस्थिति की गम्भीरता को पूर्ण रूप से हृदयंगम नहीं कर पा रही है।

अपनी स्त्री की बुद्धि पर उन्हें सदा से एक सहज श्रद्धा थी, पर आज उसके इस व्यवहार से अकस्मात् कपूर की तरह उड़ती सी दीख पड़ी।

वे और भी ज़ोर से कहने लगे—देखो सुरमा, तुम कदाचित् अपने दुर्भाग्य की विराटता का अनुभव नहीं कर पा रही हो। तुम शायद भूली जा रही हो कि तुम्हारे और हमारे सिवा भी दुनिया में एक बड़ी वस्तु है, जिसका नाम है समाज। इसकी अवहेलना करने की शक्ति न तो मुझमें है और न तुममें, अवहेलना करें भी तो हम किस सिद्धांत के बूते पर? दुनिया में जिस किसी ने भी कभी समाज को फटकार बताकर ठुकरा दिया है, उन्होंने ऐसा किसी सत्य का, किसी सिद्धांत का अथवा किसी महावाणी का आधार पाकर ही किया है। प्रस्तुत अवसर पर कौन सा सिद्धांत खतरे में है? कौन से सिद्धांत की रक्षा इससे होगी? अत्यंत उत्कट समाज-विद्रोहियों ने भी समाज के पूर्णता की अवज्ञा करने का साहस नहीं किया, उसे केवल इधर काटकर, उधर पैबंद लगाकर अथवा पैबंद लगाने का प्रस्ताव रखकर ही संतुष्ट रहना पड़ा है। इसका कारण स्पष्ट है, वे समाज में थे। आर्किमिडिस की तरह वे भी कह सकते थे कि यदि उनको सामाजिक धरातल के बाहर खड़े होने भर की जगह मिल जाय तो वे एक ही क्षण में उसे अपनी धुरी से च्युत कर दें किंतु मज़ा तो यही है कि समाज के बाहर पागलों के सिवा कोई खड़ा नहीं हो पाया है, न पा सकता है। मैं अवश्य यहाँ समाज के अर्थ में किसी संप्रदाय विशेष के समाज को नहीं ले रहा हूँ। समाज अर्थ में देश के सभ्य-समाज को ले रहा हूँ। और जो क्रांतिकारियों की बात है, उन लोगों ने भी कितना कर पाया है? समय-समय पर क्रांतिकारियों ने

आकर घोषित किया है—"हे विश्ववासीगण, गतानुगतिकता का राज्य अब शेष हो चुका, अब से उसके राज-सिंहासन पर बुद्धि की प्रतिष्ठा हुई।" किंतु क्या बुद्धि अंत तक प्रतिष्ठित हुई? नहीं हुई। ऐरे-गैरे की बात छोड़ देता हूँ, क्या उन्होंने स्वयं अपने जीवन में ही निरवच्छिन्न बुद्धि को पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित कर पाया है? नहीं पाया .... ।

अध्यापक जिन बातों को कह रहे थे, वे प्रथम दृष्टि में अप्रासंगिक जँचने पर भी ठीक अप्रासंगिक न थीं। अध्यापक केवल चिल्लाकर सोच रहे थे। उन्होंने अपने जीवन में कोई अपराध करना तो दूर रहा, कभी अपराध से भेंट तक भी नहीं की थी, कभी अपराध के पथ पर ही नहीं चले थे, आज वे ही एक अकल्पनीय परिस्थिति में पड़कर, अपनी सहधर्मिणी को ही भ्रूणहत्या-जैसा घृणित अपराध करने के लिये परामर्श दे रहे हैं। केवल यही नहीं, अपने समस्त वैज्ञानिक कौशल से उसमें सहायता देने के लिये उद्यत हैं, इसमें उनके मन में तनिक उधेड़बुन हो रही थी, भावों में तनिक बनावटीपन जोड़ना पड़ रहा था और तर्कशास्त्र की पूँछ कुछ मरोड़नी पड़ रही थी, इसलिए इसमें आश्चर्य ही क्या है? वे मानो अपनी ही चिंताधारा में प्रवाहित होते हुए कहने लगे—खैर, देखा जाय इस क्षेत्र में हमारा कर्तव्य क्या है, कुछ है भी, या नहीं। अवश्य कोई मुझसे ऐसी आशा नहीं कर सकता कि इस अनिमंत्रित तथा अज्ञात कुलशील बच्चे को मैं अपनी संतान कहकर स्वीकार कर लूँ। यह बात मेरे लिये, तुम्हारे लिये या किसी के लिये भी अंत में अच्छे परिणाम की जननी नहीं हो सकती। जीवन भर मैं इस घृणित झूठ को अपनी पीठ पर लाद नहीं सकता; कभी नहीं। इसके अतिरिक्त मैं यह

जो त्याग स्वीकार करूँगा, उसे क्योंकर करूँ ? इससे कौन से महान उद्देश्य की जड़ पुष्ट होगी। क्या तुम्हीं इस झूठ को जिंदगी भर बर्दाश्त कर सकोगी ? नहीं कर सकोगी, नहीं, मैं जानता हूँ—कहकर वे समर्थन के लिए सुरमा के मुँह की ओर ताकने लगे, किंतु सुरमा ने केवल एक संक्षिप्त वाक्य "कहे जाओ" कहकर पहले की-सी पथराई हुई उदासीन मुद्रा धारण कर ली ; वह देख रही थी कि अध्यापक की दौड़ कहाँ तक है।

—इस क्षेत्र में बचत का एक ही उपाय है, और वह है भ्रूणहत्या। —अध्यापक ने इस बार निधड़क होकर मन की बात उगल दी,—मैं जानता हूँ भ्रूणहत्या महान पातक तथा अपराध है और उससे भी जो बुरी चीज़ है वह है हद दरजे की कायरता। किंतु ऐसी अवस्था में जकड़े जाकर इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। मैं प्राचीन तथा अर्वाचीन समस्त समाज-विज्ञान को चुनौती देता हूँ कि वे इस जटिल परिस्थिति में से हमें कोई मार्ग-प्रदर्शन करें। जब समाज-विज्ञान उसका कोई समाधान या कोई मार्ग-निर्देश नहीं कर सकता तो उसे क्या अधिकार है कि वह हमारी और तुम्हारी ओर उँगली उठावे। हम तो एक समाधान खोजे ले रहे हैं, चाहे वह कितना ही बुरा क्यों न हो। क्या यह उचित होगा कि हम इस नवीन समस्या का नवीन ढंग से समाधान न कर उसके पहियों के नीचे दबकर मर जावें ? वाह·········।

अध्यापक इसी धुन में और भी बहुत कुछ कहना चाहते थे, किंतु केवल इतना ही कहकर चुप हो गये— मैं और मेरा विज्ञान इस संबंध में

तुम्हें पूर्ण सहायता देने के लिये तैयार है। अपनी सहधर्मिणी के लिये मैं घृणित-से-घृणित अपराध करने के लिये प्रस्तुत हूँ·····।

अध्यापक का का सारा वक्तव्य समाप्त हो चुका था, स्वभावतः उन्होंने आशा की कि अब सुरमा कुछ कहेगी, किंतु वह कुछ न बोली। वह उसी तरह इकटक दीवार की ओर देख रही थी, उसका प्राण मानो अपना धर्म छोड़ चुका था। देखने में तो सुरमा चुपचाप बैठी रही, किंतु वह निविड़ चिंता में मग्न थी। जब कहने की बातें बहुत हो जाती हैं, तब मौन आ धमकता है। सुरमा का यह मौन वाचालता से ओतप्रोत था, फिर भी धीरे-धीरे यह मौन दोनों के लिये कष्टकर हो उठा। सुरमा फिर भी चुप्पी साधे रही, और जब वह बोली तब अध्यापक उत्तर पाने की आशा त्याग चुके थे। सुरमा ने बोलना शुरू किया, उसका स्वर आत्मसंवृत तथा संयत था, किसी प्रकार के कोई हृदयावेग का चिह्न उसमें नहीं था। जैसे विचारपति मुकद्दमे का फैसला सुनाता हो।

—मैं तुम्हारी वैज्ञानिक सहायता नहीं चाहती, बच्चे की हत्या मैं नहीं करूँगी, हाँ यदि तुम चाहो तो मेरे कृत्य को प्रकाश में ला सकते हो। मुझे कुछ कहना नहीं है, किंतु मैं बच्चे की हत्या नहीं करूँगी। क्यों करूँ? उसका क्या दोष है? इस अनियमिता तथा अपराध के लिये जो दुष्ट जिम्मेदार है, उसको तो मैं सजा नहीं दे सकती फिर इस निरपराध बच्चे को क्यों सजा दूँ? क्यों? यही न्याय है? तुम शायद कहो कि अपराधी का पता पाते ही खुशी से उसे कटघरे में खड़ा किया जायगा। एक मिनट के लिये मान लिया कि मैंने उस दुरात्मा की खोज पा ली, और मैंने उसपर कानून रूपी बुलडाग को हुलका दिया, किंतु

क्या उससे मेरा अक्षुण्ण सतीत्व लौट आवेगा ? या मेरे अन्दर जो प्राणी शनैः शनैः बल तथा जीवन संग्रह कर रहा है वह हवा हो जायगा ? यदि यह न हो सके तो अपराधी जेल में चक्की का डंडा घुमावे या तख्ते ताउस पर बैठे, इससे कुछ आता जाता नहीं है। कम-से कम मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती, रह गई बात बदला लेने की, सो उसके लिये मैं इस समय व्याकुल नहीं हो रही हूँ......। मैं समझ गई हूँ कि मेरा जीवन नष्ट हो चुका, किसी भी बचत की संभावना नहीं।......

—कहकर सुरमा अध्यापक को असीम विस्मय-सागर में डुबाकर जिस प्रकार अचानक आई थी उसी प्रकार अचानक चली गई। उसकी आँखों के कोने में अश्रुधारा घनीभूत हो रही थी, तभी तो वह जल्दी से उठकर भाग गई।

अध्यापक ने अभ्यासवश यंत्र की भाँति निकट पड़ी हुई वैज्ञानिक पत्रिका को उठा लिया, और उसमें मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करने लगे। पत्रिका के अक्षर मानो उनकी आँखों के सामने घूम-घाम कर नाचने लगे। उनकी दृष्टि धुँधली हो पड़ी, आज उनका मन सचमुच अशांत हो रहा था। शादी वे करना ही कब चाहते थे ? अपनी एक मात्र दीदी के प्रबल अनुरोध में फँसकर उन्होंने विवाह किया था, विवाह करने के बाद से वे बराबर यह अनुभव करते आ रहे थे कि दीदी के परामर्श को ग्रहण करने से उनका भला ही रहा, किंतु पिछले दो महीने से वे कितनी अशांति में रहे हैं मानो उसने उनके जीवन में घर ही कर लिया था। कितनी परेशानियाँ रहीं, उनकी कोई हद है ! उस दंगेवाली घटना के बाद बड़ी मुश्किलों से उन्होंने अपने मन को

स्थिर कर पाया था कि अब यह नया बखेड़ा आ पैदा हुआ। और बखेड़ा भी कैसा कि जैसा न कभी देखा गया न सुना गया। नहीं, मामला अब उनकी सहन-शक्ति के बाहर होता जा रहा है। आखिर, सहन-शक्ति की भी तो एक सीमा है न। उन्होंने झुँझलाहट में मासिक-पत्रिका को पटक दिया, और अत्यंत उत्तेजित अवस्था में कमरे में चहलकदमी करने लगे।

बगल के कमरे से सुरमा ने पुस्तक पटकने की आवाज़ सुनी।

तो वे क्रोध भी कर सकते हैं, और वह क्रोध भी अनाप-शनाप--- सुरमा ने अपने मन में यह सोचा, और उस दिन से खाने-पीने में बड़ी सतर्क रहने लगी। न जाने कितने प्रकार के वैज्ञानिक विष हैं, उनमें से किसी का एक ग्रेन खाने में मिला दिया गया तो फिर गर्भ के गिर जाने में कितनी देर लगेगी। और केवल उसका गर्भपात ही क्यों, उसके पति जैसे क्रोध में हैं, उससे वे यदि उसके प्राण का ही निशाना बनाकर कोई चाल चलें तो आश्चर्य ही क्या है? साधारण अवस्था में अध्यापक के संबंध में ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती, किंतु अब वे सभी कुछ कर सकते हैं। बार-बार उनके पुरुषत्व रूपी पूँछ पर पैर पड़ चुका है न......।

सुरमा ने अपने पति के क्रोध का कारण तो समझ लिया, किंतु वह उनसे सहानुभूति नहीं कर सकी; वरन् इससे उसका ही क्रोध सुलग उठा। उसने कहा—क्यों? मुझपर इतना क्रोध क्यों? मेरा इसमें क्या दोष है?

अब सुरमा बराबर इसी धारणा के वशीभूत रहने लगी कि अध्यापक उसे विष देने की टोह में रहते हैं। सभी समय वह संदिग्ध तथा सजग रहने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके स्नायु अत्यंत खिंची हुई अवस्था में रहने लगे। किसी खाने-पीने की चीज़ में ज़रा भी संदेह हुआ कि उसने उसे वहीं फेंक दिया। खाने के पहले वह प्रत्येक वस्तु को खूब सूँघ लेती थी, मानो ऐसा करने से विष रहने पर उसे तुरंत मालूम हो जायगा। वह कभी-कभी अपनी इस मूर्खता पर हँस भी देती थी, किन्तु फिर भी खाने का समय आया नहीं कि उसने सब चीज़ों को सूँघना प्रारंभ किया। प्रायः ऐसा होता कि वह घर का पका हुआ खाना फेंकवा देती और बाज़ार से खाना मँगाकर खाती थी। बुढ़िया कहारिन इस अद्भुत् आचरण को देखकर आश्चर्यान्वित नहीं होती थी, वह जानती थी कि गर्भवती अवस्था में औरतें कुछ चटोरी हो ही जाती हैं।

वह गर्भ का असली रहस्य नहीं जानती थी।

एक दिन अध्यापक के किसी छात्र के घर में कुछ उत्सव था, उस अवसर पर उसने एक बड़े थाल में तरह-तरह की मिठाइयाँ सजाकर अध्यापक के घर पहुँचा दीं। छात्र स्वयं मिठाइयों के साथ आया था। सदा की तरह छात्र के चले जाने पर बुढ़िया मिठाइयों की थाली उठाकर मकान के अन्दर ले आई। सुरमा संयुक्तप्रांत की मिठाइयों में बालूशाही और दलबेसन बहुत पसन्द करती थीं, किन्तु उसने थाल की एक भी मिठाई नहीं खाई। उसने दूर से उन मिठाइयों को सावधानी से सूँघ लिया, पर उसने ज़रा भी मन न डिगाया। आखिर बुढ़िया रसोइए तथा अध्यापक ने उन्हें बड़े चाव से खाया।

उसी दिन संध्या समय सुरमा बुढ़िया को बाज़ार भेज रही थी वह समझाकर कह रही थी क्या-क्या सौदा लाना होगा—पावभर बालूशाही और पावभर दलबेसन लाना, समझी? चौराहे पर बंगावाली दूकान से...... ।

बुढ़िया आश्चर्य में आकर बोली—यह क्या माँ जी, सवेरे इतनी बालूशाही और दलबेसन आये उनमें से ज़रा भी न रक्खा, सब इधर-उधर बाँट दिये ।

—नहीं, नहीं, बाँट नहीं दिये, अभी बहुत रखे हैं, किंतु उस दूकान के अतिरिक्त ये चीजें और कहीं की मुझे अच्छी नहीं लगतीं—सुरमा ने ज़मीन की ओर देखते हुए कहा ।

बुढ़िया जोर से कह उठी—क्या कहती हो माँ जी, किस-किस के बीच मिलान कर रही हो? कहाँ राजा भोज और कहाँ भुँजवा तेली? मकान में हलवाई बुलाकर बनाई गई चीज़ और ही है, भला यह मूँगफली के तेल में तैयार की हुई बाज़ार की चीज़ उसे कैसे पा सकती है ।

—इतनी बातें मैं नहीं जानती, मुझको तो बाजारू चीज़ ही अच्छी लगती है । संभव है, मैं ही गलती पर होऊँ—कहकर वह बुढ़िया के हाथ में रुपया डालकर जीने के ऊपर चली गई ।

बुढ़िया बड़े आदमियों की खामख्याली तथा झक्कीपन को कोसती हुई चली गई । असली बात क्या है, तथा सुरमा विष का संदेह कर इन मिठाइयों को नहीं खा रही है, यह बात भला वह कैसे जानती । जिस पर यह विष-प्रयोग का संदेह किया जा रहा था, वे अध्यापक

मजूमदार भी इस सम्बन्ध में संपूर्ण रूप से अँधेरे में थे। यह बात सच है कि सुरमा-द्वारा अपना परामर्श ठुकरा दिये जाने पर वे पहले-पहल बहुत नाराज़ रहे, कई दिन तक उनके पठन-पाठन का सिलसिला टूट गया। अंत में वे बाहर से तो शांत हो गए, परन्तु चुपके-चुपके यह देखने लगे कि घटनाचक्र किस ओर जाता है—इसके बाद कुछ करना उनकी शक्ति तथा सामर्थ्य के बाहर था, इसलिये मजबूर हो उन्होंने तमाशा करने की नीति अख्तियार की।

दंगे के बाद गिरफ़्तारियाँ शुरू हुईं। सवाल-जवाब तथा बयान होने लगे, किन्तु जो असली अपराधी थे, वे कम पकड़े गये। कानपुर में जब गिरफ़्तारियों का बाज़ार गरम था, उस समय ये बदमाश बंबई, लाहौर और कलकत्ते में गुलछर्रे उड़ा रहे थे। फिर भी बहुत से आदमी गिरफ़्तार हुए, और मुकदमे चलने लगे। अध्यापक मजूमदार के मुहल्ले में लूट-मार मचाने के जुर्म में भी कुछ आदमी गिरफ़्तार हुए, उनको सिनाख्त करने के लिये बुढ़िया और सुरमा भी तलब हुई। सुरमा जाने के लिये तैयार न हुई, इसलिए केवल बुढ़िया गई।

ज़िला जेल की एक बैरक के पीछे सिनाख़्त की कार्रवाई हो रही थी। एक तीसरे दर्जे का मैजिस्ट्रेट कुर्सी पर बैठा था, उसके सामने एक छोटी सी मेज़ पर एक छोटा सा टाइपराइटर रखा था। इधर-उधर कागज़ात बिखरे हुए थे। अभियुक्तों के वकील तथा सरकार की ओर से एक इंस्पेक्टर भी मौजूद थे। अभियुक्तों को एक कतार में कुछ कैदियों के साथ मिलाकर खड़ा किया गया था। वे बारी-बारी से मैजिस्ट्रेट की ओर तथा एक दूसरे की ओर निहार रहे थे।

अभियुक्तों में पूर्वपरिचित तेरह साल की उम्र का वह लड़का भी था, अपने एक साथी की मुखबिरी के कारण ही वह गिरफ्तार हुआ था। हवालात में आये अभी उसे दो ही चार दिन हुए थे, किन्तु इसी बीच में उसका चेहरा कुम्हला गया था, और उसकी अल्हड़पन-पूर्ण प्रफुल्लता मानो मंत्रबल से लुप्त हो गई थी। वह दूसरे अभियुक्तों के साथ गंभीर होकर खड़ा था। एक-एक गवाह आता था, और अभियुक्त साँस रोककर अपने सामने से उसके जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वह सबको आँखें फाड़-फाड़कर देखता हुआ, निकल जाता था तभी उनको शांति मिलती थी।

कोई-कोई गवाह खड़ी कतार के पास आते ही बिना सबको देखे ही कह देता था—हुजूर, यहाँ कोई पहिचान में नहीं आता।

मैजिस्ट्रेट और सरकारी वकील उसे फिर से देखने को कहते थे, बाध्य हो वह फिर से देखता था।

कुछ गवाह ऐसे भी आते थे जो किसी के द्वारा अनुरुद्ध न होकर स्वयं अपनी ओर से ही प्रत्येक अभियुक्त के चेहरे को बड़ी देर तक घूरते थे, उनका घूरना इतना विकट होता था कि वे चाहे सिनाख्त करें या न करें अभियुक्तों का दिल भीतर-ही-भीतर बैठ जाता था। वे जानते थे कि इन्हीं गवाहों की गवाही पर ही उनकी आज़ादी और शायद जीवन या मृत्यु निर्भर है।

एक के बाद एक न मालूम कितने गवाह आये और अपना काम कर चले गये। मैजिस्ट्रेट टाइप कर सिनाख्त का नतीजा लिखते जाते थे।

जब बुढ़िया नौकरानी की बारी आई, तो वह सिनाख़्त की परेड के हाते में घुसते ही दूर से उस तेरह साल के लड़के को पहिचान गई। वह मन-ही-मन ज़रा मुस्कराई, हाँ, अब फँसे हो, किंतु उसके बैठे हुए चेहरे को देखकर उसका दिल पसीज गया। जब उसे सिनाख़्त करने को कहा गया तो वह धीरे-धीरे खड़ी कतार के सामने से निकल गई। एक उस लड़के के अतिरिक्त उसे बोध हुआ मानो वह किसी को नहीं पहिचानती। लड़के के सामने वह अन्य अभियुक्तों से अधिक देर तक खड़ी रही, किंतु अंत तक उसने उसका हाथ नहीं पकड़ा। लड़के ने देखते ही बुढ़िया को पहचान लिया, इसलिये वह भय और दुविधे से काँप-सा उठा। उसको पूर्ण निश्चय था कि बुढ़िया उसे पहिचान लेगी, भला अभी हाल की ही तो घटना है, क्यों न पहिचानती? किंतु जब बुढ़िया ने अंत तक उसे नहीं पहचाना तब वह आश्चर्य से अवाक् रह गया। अपने तरुण हृदय में उसने इसका कुछ कारण ढूँढ़ नहीं पाया। उसने सोचा—शायद मैंने इस समय दूसरी कमीज़ पहन रखी है, तभी बुढ़िया मुझे पहिचान नहीं पाई। वह अपने मन से बहुत ख़ुश हुआ कि यह दूसरी कमीज़ पहिनने की उसकी हिक़मत ख़ूब रही।

बुढ़िया को दया लग रही थी कि भला इतने नन्हें से लड़के को क्या पहिचानना, और क्या जेल की हवा खिलाना? वह तो यों ही अधमरा हो रहा है। बुढ़िया ने सुन रखा था कि जिसको उसने पहिचान लिया, बस, वह कालेपानी गया। इसके अतिरिक्त उस लड़के ने किया ही क्या था? एक गुड़िया चुराई थी, और उसे एक थप्पड़ मारा था, बस इतने ही के लिये कालापानी, बीस साल तक चक्की चलाना?

बुढ़िया इसके लिये तैयार न थी। हाँ, यदि उसके सामने इस समय उस लड़के का पिता पड़ जाता, तो उसके निर्दोष होने पर भी वह उसका हाथ पकड़कर उसे कालेपानी भिजवाकर ही मानती। उसने अपने लड़के को उचित शिक्षा क्यों नहीं दी?

एक बुढ़िया के सिनाख्त न करने से कुछ बना-बिगड़ा नहीं, बहुत से और दूसरों ने सिनाख्त किया, किसी ने भूल भी की और किसी ने सच भी बताया। फलस्वरूप बहुत से मुकदमे चलने लगे, हिन्दू और मुसलमान दोनों के विरुद्ध। गवाहों ने जहाँ पर ईमानदारी से भी काम लिया, वहाँ बहुत से क्षेत्रों में उन्होंने एक का अपराध दूसरे के सिर भी मढ़ दिया। जिसने जो अपराध नहीं किया उसको भी अपराध के लिये अभियुक्त होना पड़ा।

बात यह है कि सरकार यह दिखाने के लिये व्यग्र थी कि वह दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन कर रही है, इसलिये मुकदमे बड़े जोश से चलाये जाने लगे।

जिस मुहल्ले में सुरमा रहती थी उस मुहल्ले के कुछ घरों में लूटमार मचाने के सम्बन्ध में उनतालीस मुसलमानों पर मुक़द्दमा चल रहा था। मुक़द्दमे के कारण अदालत में काफी भीड़ लगी रहती थी। सभी अख़-बार न मालूम किस मनोवृत्ति के वशीभूत होकर इन मुक़द्दमों का विस्तृत किन्तु अतिरंजित विवरण प्रकाशित कर रहे थे। वर्षा के कुकुरमुत्ते की तरह बहुत से नये अख़बार इसी पवित्र उद्देश्य को लेकर प्रकट हो गए, और सफलता के साथ चलने लगे। इन अख़बारों का एकमात्र उद्देश्य बोध होता था, वह था कि किसी प्रकार सनसनी पैदा कर ग्राहकों से पैसे ऐंठे जायँ। journalism की रीति-नीति में इनका जरा भी विश्वास न था, इनके निकट केवल वह उदर-पोषण का साधन मात्र थी।

उस समय का वातावरण इतना तास्सुब से भरा था कि हिन्दू सम-झते थे कि मुसलमान अभियुक्तों के साथ मुसलमान जज पक्षपात कर रहा है, तथा मुसलमान समझते थे कि हिन्दू जज और पुलिसवाले मुस-लमान अभियुक्तों को व्यर्थ ही सज़ा दिलाने का षड़यंत्र रच रहे हैं। सभी क्षेत्रों में ऐसी धारणा उत्तेजित मन का कल्पना-विलास थी—ऐसा

कहना कठिन है। जनता के मन की ऐसी संक्रामक अवस्था हो रही थी कि प्रायः सार्वजनिक वातावरण में रमा हुआ उस समय कोई भी व्यक्ति इस विष से अपने मन की रक्षा नहीं कर पा रहा था। मुकदमा देखने के लिए जो भीड़ एकत्र होती थी, वह भी अपने धर्म के अनुसार दो दलों में बँटी होती थी, और एक दल दूसरे दल पर आवाजें कसता था।

दंगे के फलस्वरूप केवल प्रतिक्रियावाद रूपी पौदों को ही खुराक नहीं मिली। अधिकांश कट्टर सम्प्रदायवादी व्यक्तियों के कट्टरपन को भी ठेस लगी थी, और उनमें से कुछ तो खुल्लमखुल्ला और सच्चे दिल से उस मनोवृत्ति की निन्दा कर रहे थे, जो दंगे की तह में थी। एक ओर प्रतिक्रियावाद का बोलबाला था और दूसरी ओर अप्रगतिवाद अपनी इधर-उधर की बिखरी हुई समस्त शक्ति को बटोरकर प्रतिक्रियावाद के साथ अंतिम घमासान युद्ध के लिये प्रस्तुत हो रहा था।

दंगे के बाद से पड़ोसी हिन्दू-परिवारों की स्त्रियों के साथ सुरमा की घनिष्ठता बढ़ रही थी। एकाएक इस मुस्लिम-प्रधान मुहल्ले के हिन्दू-अधिवासियों ने यह आविष्कृत किया कि वे परस्पर एक दूसरे को जानते हैं, मानते हैं, और व्यापार करते हैं। परस्पर के सुख-दुःख में वे सम्मिलित होने लगे, मानो कोई विशाल परिवार हो; बंगाली, हिंदुस्तानी, मारवाड़ी में कोई भेद-भाव न रहा, वरन् इस विभिन्नता से उनकी एकता और भी दृढ़ हुई। हाँ, अध्यापक मजूमदार पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने लोगों के कहने-सुनने पर केवल इतना कह दिया था—जिसमें सब हैं, उसमें मैं भी हूँ। बस यह कहकर उन्होंने अपना पिंड छुड़ा लिया, सच तो यह है कि वे किसी तरफ भी नहीं थे।

एक दिन मुहल्ले की कुछ हिन्दू-स्त्रियों की बात रखने के लिये सुरमा एक मुकदमा देखने गई। यह मुकदमा जनता की दृष्टि सबसे अधिक आकर्षित कर रहा था, क्योंकि इसमें ४६ मुसलमान विभिन्न अपराधों में अभियुक्त थे।

सुरमा तथा उसकी सहचरियों को अदालत में दर्शकों के कटघरे में एक बेंच पर बैठने की अनुमति मिली। उनको अदालत में घुसते हुए देखकर अदालत के बाहर मुसलमान जनता आवाजें कसने लगी। उसने ऐसा इसलिये किया कि वह समझी कि ये महिलाएँ गवाह बनकर आई हैं, जनता के इस भाग की दृष्टि में ये अभियुक्त वीर थे।

सुरमा ने आवाज़ कसनेवालों की ओर न देखा, वह गाड़ी से उतरकर सीधे अदालत में अपने लिये निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँची, एक चपरासी ने उसे वहाँ बैठ जानेका संकेत कर दिया।

उस समय मुकद्दमे की सुनवाई हो रही थी।

विचारक एक बूढ़ा अंग्रेज़ था। न्यायालय रूपी आकाश में वे अपनी लाल आकृति के कारण साक्षात् धूमकेतु की भाँति शोभायमान हो रहे थे। दोनों ओर के वकील और बैरिस्टर निविष्ट चित्त से अपनी कापियों पर कुछ लिखते जाते थे। सरकारी वकील कटघरे के मुसलमान गवाह से बयान करवा रहे थे। जज साहब टाइपराइटर द्वारा गवाह का बयान जल्दी-जल्दी लिखते जाते थे। बीच-बीच में अभियुक्तों की ओर के प्रधान वकील उठकर कुछ कानूनी एतराज करते जाते थे, फलस्वरूप उनमें और सरकारी वकील में बड़ी नोंक-झोंक, चखचख तथा गर्मागर्मी छिड़ जाती थी, मोटी-मोटी किताबें खोली जाती थीं। कटघरे में सफाईगवाह

सिमटकर रह जाता था, अभियुक्त उत्तेजित हो जाते थे, और दर्शकों के कान खड़े हो जाते थे। जज दोनों पक्षों की बातें सुनकर बादलों की तरह गंभीर स्वर से बीच-बचाव कर समाधान करते थे। दोनों पक्ष उसे सिर नवाकर मान लेते थे, और गवाह सिखाये हुए तोते के समान पहले की भाँति उगलना शुरू कर देता था। प्रश्नोत्तर या आलोचना उसी तरह जारी हो जाते थे। सरकारी वकील अपनी गवाह रूपी नैया को बड़ी सावधानी से कानून के चट्टान तथा भँवरों से बचाते हुए फिर से खे निकलते थे। टाइपराइटर फिर से चल निकलता था, टिप्...टिप्...टप टप......।

फिर सब वैसे ही चल निकलता, जैसे कुछ भी नहीं हुआ, अदालत के अन्दर केवल दो मनुष्यों की आवाज़ गूँज रही थी—एक सरकारी वकील की डपटती हुई आत्मविश्वासपूर्ण आवाज़, और दूसरी गवाह के गिड़गिड़ाने की आवाज़। सरकारी वकील मानो गवाहों के गले में उँगली डालकर उन्हें बयान उगलने के लिये मजबूर कर रहा था। इसके अतिरिक्त एक आवाज़ और हो रही थी, टिप··टिप···टप···टप···।

सुरमा गवाह के बयान के पीछे-पीछे अपने को ले चलने का प्रयत्न कर रही थी। सरकारी वकील कह रहा था—मकान के अन्दर दाखिल होकर फिर तुमने क्या किया?

—हम लोग चार-चार पाँच-पाँच की टुकड़ियों में बँट गये, और एक-एक कमरे में घुस गये।

—कमरे में घुसकर तुम लोगों ने क्या किया?

—संदूक, बक्स वगैरह तोड़ने लगे।

—तुम जिस कमरे में घुसे उसमें कोई था भी ?

—जी, हाँ, हुजूर…।

सरकारी वकील ने पूछा—कौन था ?

—एक अधेड़ मर्द और एक अधेड़ औरत।

जज लिखते जा रहे थे, टिप…टिप…टप…टप…। इसके बाद बीच-बीच में लाइन बदलने का करं—र्रं—र्रं…। जज को एक सनक थी—मक्खी मारना, कोई मक्खी मेज पर बैठी नहीं कि जज बयान, गवाह सब कुछ भूल जाते थे, और एक मूठदार जाली के अचूक निशाने से उसे मारकर ही दम लेते थे तथा सफलता के गर्व से भरी हुई मक्खी की ओर देख कर पुनः अपने काम में लग जाते थे। सरकारी वकील इस बात से मन-ही-मन बहुत नाराज़ हो उठते थे, किन्तु उस भाव को छिपाकर उन्हें प्रशंसा-भरी दृष्टि से मरी हुई मक्खी की ओर देखना पड़ता था, मानो मक्खी कोई शेर हो। जज मक्खी के शिकार के कारण बातें नहीं सुन पाते थे, इसलिए वकील को पूछे हुए प्रश्नों को पुनः दुहराना पड़ता था। सर्व साधारण के बीच में जज महाशय मक्खी मार जज के नाम से प्रसिद्ध थे।

जब गवाह अधेड़ मर्द और अधेड़ औरत के बारे में बयान दे रहा था, उसी समय जज ने पटाख से एक मक्खी मारी। नतीजा यह हुआ कि सरकारी वकील ने फिर सवाल दुहराया—कौन था ?

गवाह बड़े ध्यान से जज की ओर देख रहा था, उसने बिना सोचे-समझे कह दिया—मक्खी……।

सरकारी वकील के बदन में मानो आग-सी लग गई, वे बोले—देखो बरकत, तुमसे जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, उसका जवाब दो, मैं पूछता हूँ उस कमरे में कौन-कौन थे ?

गवाह घबड़ा गया था, उसने हड़बड़ा कर कहा—हजूर सभी थे.........।

सरकारी वकील ने भौंह चढ़ाकर और पैंतरा बदल कर कहा—सब कौन ?

—मैं, निजामुद्दीन, अहमद, छोटे, इब्राहीम, सभी—कहकर वह कटघरे की ओर देखने लगा।

खुर्राट सरकारी वकील ताड़ गये कि गवाह घबड़ा गया है, इसलिये गुस्सा आने पर भी वे ठंडे पड़ गये, और बड़ी नरमी से बोले—अच्छी बात है, तुम बड़े अक्लमंद हो। यह तो मालूम हो गया कि वहाँ तुम लोगों में से कौन-कौन था, अब तुम अदालत को यह बताओ कि तुम लोगों के अलावा भी वहाँ और कोई था ?

—हाँ दो शख्स थे।

—कौन-कौन ?

—एक मर्द और एक औरत ....।

इस तरह ठोकरें खाते-खाते, पत्थर-टीले पार करते-करते गवाह का बयान आगे बढ़ने लगा।

सुरमा ने कुछ देर तक ध्यानपूर्वक गवाह का बयान सुना। एक मकान कैसे लूटा गया, कर्णफूल लेने के लिये कान कैसे फाड़ डाला गया। जब पुरुष ने अपनी स्त्री के प्रति किये गये इस व्यवहार का

प्रतिवाद किया तो कैसे वह अपनी स्त्री के सामने ही मारते-मारते मार डाला गया—यह बयान उसी की कहानी थी ।

यह कहानी ऐसी थी जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, किन्तु विगत कई महीनों से सुरमा ने इस तरह की इतनी कहानियाँ सुनी थीं कि उसे इस प्रकार की कहानियों से अरुचि-सी हो गई थी। केवल उसे ही ऐसा हुआ हो, यह बात नहीं, सारे कानपुर को ही ऐसी बातें सुनते सुनते अनपच हो गई थी। इसके अतिरिक्त स्वयं सुरमा पर जो कुछ बीता था, क्या वह कुछ कम था ? उसकी याद आते ही अब भी उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह कान फोड़नेवाला मामला तो उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है। हाय, गुण्डों ने यदि इसकी अपेक्षा उसका एक अंग ही भङ्ग कर डाला होता तो कितना अच्छा होता।

सुरमा अन्यमनस्क होकर अभियुक्तों के कटघरे की ओर देखने लगी।

अभियुक्त विभिन्न मुद्रा में सात-आठ बेंचों पर बैठे थे। दो-चार तो खड़े भी थे। उनमें से अधिकांश तो बड़े ध्यान से मुक़द्दमे के सूत्र का अनुसरण कर रहे थे, किन्तु दो एक जो कम उम्र के थे, वे कभी जज के मुँह की ओर देखते, कभी दर्शकों की ओर; मानो मुक़द्दमे के साथ उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है, मानो वे भी दर्शक हैं, मुक़द्दमा देखने आये हैं।

सबसे पीछे की कतार में बैठे हुए अभियुक्तों के मुँह दीख नहीं पड़ रहे थे।

और सरकारी वकील ने उस गवाह से पूछा—हाँ, तो उस मनुष्य को किस-किसने मिल कर मार डाला ?

—इब्राहीम और छोटे...।

—तुम उनको पहचान सकते हो ?

—जी हाँ, हुजूर !

अदालत के न्यायाधीश के इशारे पर एक क्षण में अभियुक्त अपनी-अपनी बेंचों को छोड़कर एक लाइन में खड़े हो गये। उनके पैरों की बेड़ियाँ तनिक बजकर ही चुप रह गईं। गवाह अपने कटघरे से निकला, और जरा भी सोच-विचार न कर सीधा मुलजिमों की ओर गया, और इब्राहीम तथा छोटे का हाथ पकड़ लिया। इब्राहीम और छोटे के मुँह पर जैसे किसी ने कालिख पोत दी। वे उस समय कल्पना की आँखों से फाँसी का तख्ता देख रहे थे।

सुरमा ने अब तक सभी अभियुक्तों को नहीं देख पाया था, अब उसने उन्हें देखा। अभियुक्त जाकर अपनी बेंचों पर बैठ गये, किन्तु इस गड़बड़ी में आगे की बेंचवाले पीछे की बेंच में और पीछे की बेंचवाले आगे की बेंच में हो गये।

सुरमा इस समय अभियुक्तों में से एक व्यक्ति की ओर बड़े ध्यान से देख रही थी। यह व्यक्ति पहले तो पीछेवाली बेंच पर था, किन्तु इस बार उसे बीच की बेंच पर जगह मिली थी।

सुरमा उस व्यक्ति की ओर देखते-देखते काँप सी उठी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह उसके सिवा दूसरा नहीं हो सकता, जिसने उस

पर···? वे ही बड़ी-बड़ी आँखें, गोल चेहरा, जरा उभरी हुई नाक, चौड़ी मज़बूत ठुड्डी कामुकताद्योतक ओंठ। हाँ, यह वही था। सुरमा को बोध हुआ जैसे उसके हृदय का रक्त बड़ी ज़ोर से उबल रहा है। धिक्कार है! धिक्कार! प्रतिहिंसा! उसे इच्छा हुई कि वह चिल्ला उठे——अजी लोगो यही वह नराधम पशु है जिसने मुझ पर बलात्कार किया है, मेरी अस्मिता, पवित्रता में धब्बा लगाया, मेरा सोने का संसार आग लगा कर उजाड़ दिया, सदा के लिए मेरे मन की शान्ति हर ली··· ······।

बड़ी कठिनाई से उसने अपने अन्दर से उठते हुए इस चिल्लाहट को रोका। इस प्रबल प्रयास के कारण उसके माथे पर से पसीना टप-टप गिरने लगा।

सुरमा पहले तो इस अभियुक्त की ओर पैशाचिक दृष्टि से ताकती रही, पर तुरन्त ही उसमें परिवर्तन हो चला। ओह, कैसा वह दुर्बल हो गया है, किन्तु उसका रंग पहले से कितना निखर उठा है! यह बंगाल का दूध-महावर नहीं, यह मध्य एशिया की "आतिशे सैयाल" (तरल आग) है। उस अभियुक्त के मुँह पर भय या उत्कंठा का कुछ भी चिह्न न था, केवल एक सर्वस्वहीन के आत्म-समर्पण का करुण भाव। वह न तो दूसरे अभियुक्तों की तरह इधर-उधर ताक रहा था, न किसी से घुल-मिलकर बातें ही कर रहा था, सिर नीचा किए हुए जड़ का-सा अपनी जगह पर बैठा था। स्पष्ट ही प्रतीत होता था कि इस स्थान-परिवर्तन के कारण वह सुखी नहीं है और न अपने साथी अभियुक्तों की तरह वह कटघरे में बैठना कुछ गौरव की बात समझता है।

देखते-देखते सुरमा ने आश्चर्य के साथ यह अनुभव किया कि वह और मुलजिमों में फबता नहीं है, वह मानो अपने साथ के लोगों से सभ्यतर और अधिक मार्जित है। उसमें और इन अभियुक्तों में कहीं मानों एक व्यवधान की खाई है, जो कभी पाटी नहीं जा सकती।

इब्राहीम और छोटे के सिनाख्त के समय केवल एक बार के लिये ही इस अभियुक्त ने मुँह उठाकर इजलास की ओर देखा था, किन्तु सुरमा ने इतने ही में अनुभव कर लिया कि उसकी चितवन में कोई ऐसी बात है जो अध्यापक मजूमदार या और किसी पुरुष की आँखों में उसे देखने नहीं पड़ती, जो कर्कश और खुरदरी होने पर भी अपनी एक विशे-षता रखती है। क्या यह वही दृष्टि तो नहीं है जो झुका देती है, नवा देती है, अर्घ्य लेकर ही छोड़ती है और नारी जिस दृष्टि के सामने अपने को अबला अनुभव करती है। सुरमा ने आखिर यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यद्यपि वह साधारण अपराधियों में एक साधारण अपराधी की ही तरह बैठा है, फिर भी लोगों पर सहज ही में उसकी विशिष्टता प्रकट हो रही है। नहीं, वह साधारण अपराधी नहीं है। अपराधियों में भी वह अभिजात है।

अकस्मात् कुछ स्मरण हो आने पर सुरमा को जैसे काठ मार गया। वह उसी की संतान को तो अपने गर्भ में धारण कर रही है ? वह उसे अधिक ध्यान से देखने लगी। देखते-देखते कभी तो घृणा से उसके रोंगटे खड़े होने लगे, कभी क्रोध में वह बेसुध होने लगी, उसके मन में यह विचार उठ रहा था कि वह उसे बलात्कार के लिये अभियुक्त सिद्ध करे, किन्तु जब वह अपने गर्भस्थ बच्चे की बात सोचती थी, तो उसे

कोई चारा नहीं दिखलाई देता था, और वह ठंढी पड़ जाती थी। गर्भस्थ बच्चे की बात सोचकर उसे यह भासित होने लगा कि वह माने या न माने इस अज्ञात-कुल-शील बेड़ी पहने हुए कटघरे में आबद्ध अभियुक्त के साथ उसका एक गहरा संबंध है।

यह देखकर सुरमा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि इस व्यक्ति ने मारी दुपहरी सिनाख्त के समय के अतिरिक्त फिर कभी सिर ही नहीं उठाया ! इस आश्चर्य जनक भाव को लेकर ही वह अदालत से चली गई।

सुरमा प्रायः नित्य मुकद्दमा देखने के लिये आने लगी। मानो कोई अज्ञात प्रेरणा दस बजते ही उसे अदालत की ओर घसीटे लिए जा रही हो। वह बेचारी अपने को किसी तरह संयत कर ही न पाती थी। रविवार का दिन तो वह बड़ी कठिनता से काटती थी।

बहुत सोच विचार के बाद सुरमा ने अपने पति से इस आविष्कार की बात न कहना ही उचित समझा। क्योंकि वह जानती थी कि अपराधी का पता लगने पर भी वे मुकद्दमा चलाने के लिये राज़ी न होंगे। इसके सिवा अब शायद चाहने पर भी मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता था। क्योंकि घटना की प्रारंभिक सूचना जो कानून की दृष्टि से आवश्यक है; दी ही नहीं गई। यदि अब ऐसा किया जाय तो सिवा इसके कि बद-नामी हाथ लगे, क्या और कुछ लाभ होगा ?

इसलिए सुरमा ने पति से कुछ भी नहीं कहा।

७

जिस दिन अध्यापक मजूमदार ने अपनी स्त्री को अपना गर्भस्थ बच्चा विष देकर मार डालने का परामर्श दिया था, उस दिन से वे उसका विश्वास तथा श्रद्धा खो चुके थे। सुरमा अब अपने पति में श्रद्धा करना तो दूर रहा, उनसे घृणा करने लगी। एक निस्पृह वैज्ञानिक होने के नाते सुरमा के दिल में पहले उनके प्रति एक सहज श्रद्धा थी, किन्तु इस घटना के पश्चात् वह उन्हें भीरु और कायर के रूप में देखने लगी। अपनी पक्षपातपूर्ण दृष्टि के कारण वह पति के चरित्र की उदारता तथा शांति प्रियता को केवल पाखंड कहकर उनकी हँसी उड़ाने लगी।

सुरमा ने एक दिन जरा एकान्त में विचारकर देखा कि इस समस्या का एक सुन्दर समाधान हो सकता है। इस समाधान में न तो भ्रूणहत्या ही करनी पड़ेगी, और न अध्यापक को ही जारज संतान को अपनी कहने की आवश्यकता पड़ेगी। हाँ, इसमें एक अड़चन है, पर यदि वह अड़चन पेश न हो, तभी वह बात बन सकती है। सुरमा ने यह निश्चय किया कि, जब बच्चा निर्विघ्न पैदा हो जावे, तो उसे वह

अपने असली पिता के हाथ सौंप देगी, फिर अपने जीवन के नाटक की यवनिका-पात कर कानपुर से अलग हट किसी दूसरे शहर में अपने पति के साथ नये सिरे से अपनी गृहस्थी बसावेगी। उसकी नैतिक बुद्धि, विवेक और कदाचित् उसका मातृ-हृदय उसे बता रहा था कि अन्य किसी दूसरे समाधान से यह समाधान अधिक उचित और अधिक न्याय-संगत होगा। बच्चे को उसके पिता को सौंप देने के सिवा माँ की हैसियत से उसका एक कर्त्तव्य था, एक मधुर कर्त्तव्य। यह बात याद आते ही उसके मन में अशांति की विकराल लपटें उठने लगती थीं, किन्तु वह अनिच्छुक माँ थी, मातृत्व उसके ऊपर पाशविकता के साथ सब तरह की नीति और सज्जनता पर लात मारकर लादा गया था। यह बात सोचकर वह अपने वंचित तथा बुभुक्षित मातृ-हृदय को सांत्वना देने लगती थी।

वह इस मुकद्दमे के फैसले की प्रतीक्षा करने लगी, क्योंकि इस फैसले पर ही उसके इस नवीन संकल्प की सफलता या विफलता निर्भर थी। यदि वह न छूटा तो भला फिर वह बच्चे को किसके हाथ सौंपेगी?

अदालत में दो एक दिन जाने के बाद ही सुरमा जान गई कि उस युवक मुलजिम का नाम जुलफिकार अली है। सुरमा ने मन-ही-मन कहा—जुलफिकार, जुलफिकार, उफ, यह नाम कितना कुत्सित है! यथानामो तथा गुणः।

उस नाम की भीषणता पर सुरमा बड़ी देर तक सोचती रही, फिर वह कुछ ही क्षण में इस नाम के साथ परिचित भी हो गई, और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह बहुत दिनों से इस नाम को सुनती

आ रही है। उसने फिर से मन में विचारकर देखा तो ज्ञात हुआ कि इस मनुष्य का जुलफिकार के अतिरिक्त कुछ नाम हो ही नहीं सकता था। उसने यहाँ तक देखा कि इसमें भी कार्य-कारण का सम्बन्ध अच्छा बैठ रहा है ?

सुरमा गुप्त रूप से जुलफिकार के घर के सम्बन्ध में खोज करने लगी। यह कुछ कठिन नहीं था, क्योंकि जुलफिकार के दुराचारी होने पर भी उसके पिता हाजी अब्दुल रशीद खाँ कानपुर के एक प्रमुख नागरिक थे। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि इस मुकद्दमे के कारण जुलफिकार को भी लोग जरा जानने लग गए थे।

सुरमा को यह भी पता लग गया कि जुलफिकार अविवाहित है। वह इस आविष्कार से बहुत ही आश्चर्य में पड़ गई, क्योंकि उसके अनुमान के अनुसार जुलफिकार की उम्र अट्ठाइस के लगभग होगी। सुरमा सोचने लगी—अविवाहित है, अविवाहित, तभी तो वह इतना उच्छृङ्खल और लंपट है। होगा ही, होने के लिये बाध्य है, इसके अतिरिक्त दंगे के समय जनता की मनोवृत्ति क्या थी इसका भी ख्याल रखना चाहिये। उस समय हरएक के भीतर की पशुवृत्ति खुलकर खेल सकती थी। सुरमा को यह भी मालूम हुआ कि जुलफिकार ने एफ० ए० तक शिक्षा पाई है, फिर दिमाग़ में कुछ खराबी आ जाने के कारण उसने पढ़ना छोड़ दिया। इससे उसे और भी आश्चर्य हुआ, क्रोध भी कुछ अधिक आया। खैर, जुलफिकार के साथ उसका सम्बन्ध ही क्या है, बच्चे को उसके हाथों सौंप देने के

बाद ही वह मुक्त हो जायगी, फिर वह जाने और उसकी कर्त्तव्य-बुद्धि जाने। इससे अधिक उसके वश में नहीं है।

हाजी अब्दुल रशीद खाँ की मृत्यु के बाद प्रसिद्ध जूते का कारखाना अब्दुल्ला एंड संस अब उनके ज्येष्ठ पुत्र जमाल मुहम्मद की देख-रेख में चल रहा था। हाजी साहेब के दोनों पुत्र अब इस कारखाने के मालिक थे, किन्तु जुलफिकार ने एक दिन भी व्यापार के मामलों में सिर नहीं खपाया था, इसलिए बड़े भाई जमाल ही सारे कारोबार को देखते थे, और उनकी देख-रेख में यह कारखाना उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा था। हाजी साहब के जीते-जी ही जमाल को नाम से न हो, किन्तु कार्य रूप से कारखाने की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी थी, क्योंकि मरने के दो वर्ष पूर्व से ही हाजी साहब करीब-करीब अंधे हो गये थे। अवश्य, इस अवस्था में भी वे कारखाने में पूर्व नियमानुसार ही आते-जाते थे। सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी सलाह ली जाती थी, और जिन सब विषयों में नहीं ली जाती थी, उनमें भी परामर्श देकर, हस्तक्षेप कर तथा अपने मत को मनवाकर वे सबको महसूस करवा देते थे कि कारखाने के वे ही मालिक हैं, जमाल मुहम्मद केवल उनका मंत्री या मैनेजर है। मजेदार बात तो यह है कि वृद्ध जिन मामलों में लड़कों की राय रद्द करवाकर अपनी राय चलवाते थे, आगे चलकर यह देखा जाता था कि उन क्षेत्रों में उनकी ही राय ठीक थी। पचीस साल पहले जब हाजी अब्दुल रशीद का स्त्री-वियोग हुआ, उस समय कहा जाता है कि वे शोक में इतने बावले हो गये थे कि उन्होंने व्यभिचार के हाथों अपने को बेच दिया, किन्तु कुछ ही दिनों बाद वे

फिर सम्हल गये। उसके बाद वे हज करने गये, और वहाँ से वे बिल्कुल नये आदमी होकर लौटे। उसके बाद से सन् १६३० तक जब कि उनकी मृत्यु हुई दिन रात उनकी यही साधना थी कि व्यवसाय में उन्नति हो। मरते समय वे अपने दो पुत्रों के लिये दस लाख रुपये की जमीन और जायदाद छोड़ गये थे।

जुलफिकार लड़कपन में ही मातृ-हीन हो गया था, उसकी माँ को शायद हिस्टीरिया की बीमारी थी। इससे अधिक उसके सम्बन्ध में कोई नहीं जानता था, लड़के भी नहीं।

सुरमा जुलफिकार के सम्बन्ध में यह सब विवरण इसलिये संग्रह कर रही थी कि वह यह जानना चाहती थी कि उसके रक्त-मांस से पुष्ट यह जीव किस परिस्थिति में पलेगा। उसने इस बात को करीब-करीब स्थिर सिद्धांत की भाँति मान लिया था कि जुलफिकार अपनी सन्तान को ग्रहण कर लेगा। उसकी विचार-शैली कुछ यों थी—वाह, वही जब उसका जन्मदाता है तो वह क्यों उसकी जिम्मेदारी न लेगा? वह उसे लेने के लिये बाध्य है। ऐसा सोचते हुए उसे एक बार भी स्मरण नहीं आया कि जुलफिकार-जैसे दुश्चरित्र और गैरजिम्मेदार व्यक्ति के लिये बच्चा लौटा देना कुछ विचित्र बात न होगी!

सुरमा जुलफिकार के घर की दशा का पता लगाकर इस सिद्धांत पर पहुँची कि कुल बातें मिलाकर बच्चे की परिस्थिति कुछ खराब नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त घर में पैसे की कुछ कमी नहीं है, घर के सब लोग साधारण मुसलमान-परिवार से अधिक शिक्षित हैं, फिर भी बच्चे की माँ का रिक्त स्थान कौन पूर्ण करेगा, यह सोचकर वह व्याकुल हो

उठी। हाँ एक धाय वे अनायास ही रख सकते हैं, किन्तु धाय कभी माँ तो हो नहीं सकती। सुरमा को पता लगा था कि जमाल की स्त्री बड़ी उदार है, नाते से वह बच्चे की ताई लगेगी। हाँ, फिर भी क्या वह उसे अपने पुत्र की तरह देख सकेगी? वह यदि निःसंतान होती, तो शायद ऐसा सम्भव होता, किन्तु जब कि उसकी गोद दो हीरे के टुकड़े-जैसे लड़कों और एक लड़की से भरी है तो फिर भला वह एक नाम-गोत्र-हीन लड़के को अपनी सन्तान की तरह क्यों देखने लगी? नामहीन नहीं तो क्या? यदि वह जुबेदा से बच्चे के जन्म का रहस्य व्यक्त करके उसे उसके हाथों में सौंप दे, तो उससे भी कुछ आता-जाता नहीं दीखता। बच्चे का कलंक तो मिटने का नहीं, बल्कि शायद यह हो सकता है कि जुबेदा उसे अपने लड़कों में मिलने की आज्ञा न दे। एक जारज के साथ अपने लड़के लड़कियों को मिलने देना भला कौन माँ-बाप पसंद करेगा?

जारज! कितना भीषण शब्द है?

नहीं, इस हालत में रहस्य को खोलना बेकार है। रहस्य खोला जाय या नहीं, सुरमा ने सोचकर देखा कि, जुबेदा चाहे जितनी उदार क्यों न हो, वह किसी भी हालत में उसके बच्चे को अपने बच्चों की तरह नहीं देख सकेगी। निश्चय ही वह पक्षपात करेगी। यह बात सोच कर उसका हृदय व्यथा से जर्जर हो उठा, वह हाँफ उठी, किन्तु कोई रास्ता नहीं था, क्या करती?

८

आखिर उस मुकद्दमे के फैसले की तारीख निश्चित हो गई। सेशन में पाँच महीने तक मुकद्दमा घसिटता रहा। अदालत में उस दिन भीड़ के मारे खड़े होने की जगह नहीं थी। अंदर केवल मुलजिमों के रिश्तेदारों तथा खास व्यक्तियों को प्रवेश करने दिया गया था। आज वहाँ बहुत-सी बुर्केवाली औरतें, लड़के तथा लड़कियाँ भी दीख पड़ रही थीं। अदालत के बाहर और भीतर संगीन चढ़ाये हुए संतरियों का कड़ा पहरा था। बाहर मुसलमानों की एक प्रकांड भीड़ व्यग्रता के साथ फैसले की प्रतीक्षा कर रही थी। आस-पास के हिंदू-दूकानदारों ने अपनी दूकानें बंद कर दी थीं, न जाने कौन-सा बखेड़ा उठ खड़ा हो; इसलिये वे पहले से ही सावधान हो गए थे।

सुरमा भी उस दिन अदालत में थी।

वकील, संवाददाता, अभियुक्त और अभियुक्तों के सम्बन्धी तथा दर्शक सभी व्यग्रता के साथ एक व्यक्ति के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाहर की पँचमेल भीड़ उसी की राह देख रही थी, भीड़ के लोग

लाल पगड़ीवाले सिपाहियों की ओर एक उद्धत अविश्वास के साथ घूर रहे थे।

दस बजे, साढ़े दस बजे, ग्यारह बजे, किन्तु जज का कहीं पता नहीं। वकील, अभियुक्त, दर्शक सभी कुछ-कुछ नींद के अधीन हो गए। जूरी के सदस्य इन बखेड़ों से छुटकारा पाकर घर जाने को उत्सुक थे, क्योंकि वे तो एक प्रकार से जबरदस्ती इस काम के लिए पकड़े गये थे, इस बीच में उनके रोजगार की, बड़ी हानि हुई थी। जुलफिकार अपने अभ्यास के अनुसार बिना हिले-डुले बैठा था, किंतु आज वह भी जज की खाली कुरसी की ओर बार-बार देख रहा था। सुरमा उसके चेहरे को बड़े ध्यान से बराबर देख रही थी।

जब टन्-टन् करके ठीक बारह बज गए, तब जज अपने खास कमरे से जलती हुई उल्का की तरह प्रकट होकर इजलास में अपनी खाली कुरसी पर बैठ गए। आज उनका मुँह लाल हो रहा था। वकील तथा अभियुक्त सब सहमकर खड़े हो गए। संवाददातागण हाथ में पेंसिल लेकर लिखने को तैयार हो गये। दर्शकगण सजग होकर सम्हलकर बैठ गए। वह नींद का भाव क्षणभर में चला गया। सुरमा के हृदय में इधर उथल-पुथल मच रही थी। वह भावी बच्चे की जो व्यवस्था करना चाहती थी उसको कार्य रूप में परिणत होने के लिये यह आवश्यक था कि जुलफिकार छूट जाय, बच्चे की कैसी गति हो पाती है उसी पर तो बहुत-कुछ उसके भविष्य-जीवन का बनना-बिगड़ना निर्भर है।

इजलास में अपनी कुरसी पर बैठकर जज साहब ने वक्र दृष्टि से सारी अदालत को एक बार देख लिया, फिर जूरी और अभियुक्तों की ओर देखकर एक मिनट के लिए रुककर फैसले का संक्षिप्त विवरण पढ़ने लगे। आश्चर्य पर आश्चर्य! परम आश्चर्य! किसी ने भी इतनी आशा नहीं की थी। यह जज साहब प्रांत भर में hanging judge अर्थात् फाँसी देनेवाले जज के रूप में प्रसिद्ध थे। वकील लोग बहुत ही कड़े फैसले की आशा करते थे, किन्तु यह क्या? जज अंग्रेजी वर्ण-माला के क्रमानुसार सजा सुना रहे थे, पहले ही छोटे का नाम आया।

जज ने कहा छोटे पर ३०२ दफा प्रमाणित नहीं हुई, ३०४ दफा में उसे सात साल की कड़ी कैद दी जाती है। वकीलगण मुख से आशा प्रकट करने पर भी मन में उसकी फाँसी की आशंका कर रहे थे, इसलिये वे बड़े ही आश्चर्य में पड़ गए। इस प्रकार जज साहब ने सभी की आशा के विरुद्ध नरम सजा सुनाई। इब्राहीम को भी ३०४ दफा में सात ही साल की सजा दी गई। पाँच-छः आदमी तो बिल्कुल बे-लाग छूट गए।

सबसे अन्त में जुलफिकार का नाम आया। जज ने सुनाया—जुलफिकार दंगाकारियों के साथ मौजूद था। इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उसने इन घटनाओं में क्या भाग लिया था और कितना भाग लिया था—यह किसी गवाह की गवाही से जाहिर न हो सका। जुलफिकार के लायक बैरिस्टर सर वली-उल-हक ने ठीक ही कहा है कि अभियुक्त को मकानों में गवाहों ने दंगे के वक्त मौजूद बतलाया है, किन्तु उन्होने यह नहीं

बतलाया कि लूटपाट में उसने कुछ भाग लिया है। इस अवस्था में उसे 'बेनीफिट आफ डाउट' देकर रिहा कर देता हूँ।

फैसले के अंतिम वाक्य की प्रतिध्वनि इजलास के कमरे में लुप्त हो जाने के पहले ही लोगों ने देखा कि जज की कुरसी खाली पड़ी है, तथा वे अपने खास कमरे में चले गए हैं।

हिन्दू दर्शकगण काना-फूसी करने लगे कि किसी भी हालत में यह फैसला इस जज का लिखा हुआ नहीं है, उन्होंने एक अत्यन्त ऊँचे ओहदे पर स्थित एक मुसलमान का नाम लेकर कहा—यह फैसला उनका ही लिखा है, जज केवल सुना भर रहा है?

कोतवाली के लोहार ने आकर छूटे हुए लोगों की बेड़ियाँ काट दीं। तब तक बाहर फैसले की खबर पहुँच गई थी, एकत्र मुसलमान जनता गगन-भेदी रव से "अल्लाहो अकबर" के नारे लगा रही थी।

सुरमा सिहर उठी।

रिहाई की आज्ञा पाने के बाद आज पहली बार जुलफिकार ने ध्यानपूर्वक दर्शकों के बेंचों की ओर दृष्टि डाली। बात यह है कि दूसरे अभियुक्तों की तरह वह इस मुकदमे में अभियुक्त होना गौरव की बात नहीं समझता था, अतः तनिक दबे-दबाये छिपकर रहता था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि, सब लोग आँखें गड़ाकर उसे घूर रहे हैं, इसलिये वह किसी से आँखें नहीं मिलाता था।

पहली दृष्टि में ही वह सुरमा को पहचान गया, साथ-ही-साथ उसका चेहरा फक् हो गया। सारी अदालत उसकी आँखों के सामने घूमने

लगी। एक क्षण के लिए उसकी रिहाई के आनन्द पर मानो राख पड़ गई। सुरमा ने अवश्य ही उसे पहचाना है। यदि वह अभी पुलिस बुलाकर उससे कह दे ? इस बार तो बच गया, किन्तु यदि यह मुकद्दमा चल गया तो फिर मुँह दिखाने लायक नहीं रह जायगा। कितनी घृणा की बात है ? बलात्कार ? ओह ? या अल्ला इस बार और मुझे इस दुख से बचा ले। या खुदा ? या रसूल ? या परवरदिगार, इस बार और बचाने की मेहरबानी करना।

बेड़ी कट जाने के बाद ज़ुलफिकार जमाल मुहम्मद का हाथ पकड़कर लड़खड़ाते हुए अदालत से निकल गया। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, और उसको यों ही यह बात प्रतीत नहीं हो रही थी कि सुरमा लगातार उसी की ओर घूर रही थी। उसे उसकी दृष्टि ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो ज्वाला हो।

जमाल स्नेह से सने हुए शब्दों में उसे बहुत सी खबरें देने लगा। उसने कहा, इस बीच में कारखाने की एक शाखा कलकत्ते में खोली गई है। ज़ुलफिकार इन बातों पर जरा भी ध्यान न देकर चुपचाप सुन रहा था, एक अव्यक्त भय से उसका दिल बैठा जा रहा था। अदालत के बाहर पैर रखते ही मुसलमान-जनता ने ज़ुलफिकार को जमाल के हाथ से छीन लिया और उसके गले में माला डालकर 'ज़ुलफिकार अली जिन्दाबाद' के नारे लगाने लगी। ज़ुलफिकार ने नितांत असहाय की भाँति जमाल की ओर देखा, किंतु जमाल उस समय उससे बहुत दूर जा पड़ा था। दूसरे जो मुलजिम छूट गये थे, उनकी भी यही गति हुई। वे सभी अपने मित्र तथा रिश्तेदारों से

बिछुड़ गए। अवश्य जुलफिकार की आवभगत सबसे अधिक हुई, क्योंकि वह एक रईस का लड़का था, और छूटे हुए व्यक्तियों में सबसे अधिक शिक्षित था। दूसरे अभियुक्तों ने सहज ही में उसे अपना नेता मान लिया। भीड़ में से बहुत से आदमी उनकी ओर अश्रुपूर्ण नेत्रों से निहार रहे थे। जनता की नसों में उस समय एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा था, अर्थात् जेहाद करनेवालों का उबलता हुआ रक्त।

मुसलमानों ने एक जमाने में इसी धर्मान्धता के बल पर विश्व-विजय की थी, जिसमे पृथ्वी पर घोर अशांति की सृष्टि हुई। प्रसन्नता की बात है, अब वह भाव धीरे-धीरे मर रहा है। अब उसके परों में वह शक्ति न रही। फिर भी विशेष अवसर पर वह भाव क्षणभर के लिये फड़फड़ाकर पुनः मुर्दे की तरह सो जाता है।

इन सब सम्मानों, आनन्द-ध्वनियों तथा पुष्प-मालाओं का केंद्रस्थल जुलफिकार इन बातों से विशेष आनन्दित न हो सका, क्योंकि उसे भय था कि सुषमा यहीं कहीं पास में ही है। सम्भव है, वह इस समय कोतवाली में इत्तला करने गई हो, किन्तु जुलफिकार विवश था, उसने समझ लिया कि इस सम्मानकारी भीड़ से छुटकारा मिलना कम मुश्किल की बात नहीं। उसने बाध्य होकर अपने को घटना-चक्र की गति पर छोड़ दिया। खैर, जो होगा भुगत लिया जायगा—मन-ही-मन ऐसा सोचकर उसने निश्चिंतता की साँस ली।

इतने में दंडित अभियुक्तों को जेल भेजने के लिए बाहर निकाला गया। सामने ही कई मोटर-लारियाँ शृंखलित रूप में दैत्यों की भाँति

अधीरता-पूर्वक प्रतीक्षा कर रही थीं। पुलिस के घेरे के अन्दर, अपनी बेड़ियां को झनझनाते हुए, वे दंडित कैदी लारी की ओर बढ़ने लगे। कैदियों ने एक साथ जयकार किया—अल्लाहोअकबर…। बेड़ियों की झनझनाहट के साथ मिलकर यह जयकार, शहीद की अंतिम पुकार की भाँति, दसों-दिशाओं में गूँज उठा। जनता ने अपने सहस्र कंठों से जोश के साथ पुकारा—अल्लाहो-अकबर। अभी जिन छूटे हुए लोगों का वीरों की तरह सम्मान हो रहा था, जनता उन्हें भूल गई, और वह इन बेड़ी पहने हुए कैदियों की ओर दौड़ी। भीड़ जैसे फटी पड़ रही थी। पुलिस तैयार थी, तभी……। घुड़सवार-पुलिस की सहायता से भीड़ हटाकर कैदियों के लिये मोटर तक पहुँचने का रास्ता निकाल दिया गया।

धर्म रूपी अफीम के बुद्धि-भ्रंशकारी प्रभाव से डाकुओं को वीरों का सम्मान प्राप्त हुआ, अपराधी त्राणकर्ता के रूप में पूजा पाने लगे, जिनका न तो कोई सिद्धांत था, न नीतिज्ञान, न शिक्षा, वे नर-रत्न-रूप में वर्गीकृत हुए।

जब दंडित बंदी तुमुल-जय-ध्वनि के साथ मोटर पर सवार हुए, मोटर से उठी हुई धूलि बैठ गई, और दूर में मोटर का कोई चिह्न भी नहीं दीख पड़ा, तब जनता पुनः छूटे हुए वीरों की ओर लौट पड़ी। जुलफिकार ने पहले तो यह सोचा कि इस मौके से फायदा उठाकर वह नौ-दो-ग्यारह हो जाय, किन्तु उसने देखा कि इस जनारण्य को पार करना कोई हँसीखेल नहीं है; अतः वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। इसके अतिरिक्त वह जनमत के संक्रामक प्रभाव से कुछ-कुछ प्रभावित हो

चला था। वह वहाँ पर खड़ा होकर अपने मन में यह मनसूबा बाँध रहा था कि भीड़ के पंजे से छूटते ही सीधे स्टेशन पर जाकर बंबई का रास्ता नापूँगा ; वह बार-बार अल्लाहो-अकबर के नारे सुनकर और अपने चारों ओर जीवन से छलकती हुई इस भीड़ को देखकर इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि जबतक वह इस भीड़ के संरक्षण में है तब तक कोतवाल या कोई भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। भीड़ से निकलने पर वह फरार तो हो ही जायगा।

जुलफिकार और दूसरे छूटे हुए व्यक्तियों को एक गाड़ी पर बिठाकर एक विराट जुलूस निकाला गया। बहुत से रास्तों से होते हुए यह जुलूस पार्क में जाकर एक सभा में परिणत हो गई। सभा में बहुत से वक्ताओं ने वक्तृता दी, जुलफिकार ने यद्यपि इसके पहले कभी वक्तृता नहीं दी थी, किन्तु नेताओं के अनुरोध से उसे भी दो-चार शब्द कहना ही पड़ा। उसकी शब्दाडंबरहीन लड़खड़ाती हुई वक्तृता फिर भी जनता को बहुत पसंद आई, लोगों ने तुमुल-हर्ष-ध्वनि के साथ उसका स्वागत किया।

९

जुलफिकार ने बड़ी कठिनता से इन आंदोलनकारियों के हाथ से रात आठ बजे छुटकारा पाया। इस तरह आठ घंटे तक फँसे रहने के कारण वह बहुत झल्ला गया था, धर्म तथा धार्मिकों के प्रति इससे उसकी श्रद्धा जरा भी नहीं बढ़ी। वह इतना थक गया था, साथ ही इतना अस्थिर हो गया था कि मन ही मन आंदोलनकारियों के सर्वनाश की कामना करने लगा। उसके मनमें कभी भी सार्वजनिक नेता होने की आकांक्षा नहीं थी, सच तो यह है कि उसमें किसी प्रकार की उच्चाकांक्षा नहीं थी। वह उस तरह के उपादान से गढ़ा ही नहीं गया था। जुलफिकार उच्च शिक्षित न होने पर भी, गावदी न था। आज आठ घंटे तक जनता के बीच में रहकर उनके द्वारा अभिनंदित होकर और सातवें आसमान पर चढ़ाये जाने से उसने यह बात भली भाँति समझ ली की उसके सामने सार्वजनिक जीवन का सिंह-द्वार उन्मुक्त हो गया है, जरा-सी चेष्टा करने पर वह कानपुर का एक विशिष्ट व्यक्ति हो सकता है। म्युनिसिपलिटी का सदस्य होना तो, उसने देख लिया, उसके बाएँ हाथ का खेल होगा,

चेष्टा करने पर वह कौंसिल का सदस्य भी हो सकता है, उसके अब्बा-जान तथा जमाल उसे कभी किसी काम का नहीं समझते थे, अब्बाजान तो गुजर गए, किन्तु जमाल, भाभी और दूसरे रिश्तेदारों को वह एक बार दिखा देगा कि वह मिट्टी का लोंदा नहीं, उनसे अधिक बुद्धिमान और क्रियाशील है। वह मन-ही-मन उस दिन की बात सोचने लगा जब कि वह गर्व के साथ अपने बड़े भाई के सामने सिर ऊँचा किये खड़ा हो सकेगा।

वह इसी प्रकार अपनी विचार-धारा में प्रवाहित हुआ जा रहा था, किन्तु अकस्मात् एक बात की याद आते ही वह खिन्न हो उठा। हाँ, उस बंगाली छोकरी ने आज उसे देख लिया है, वह यदि पुलिस में जाकर खबर दे कि आज उसने मुजरिम का पता पाया है, तो? तो क्या? उसके हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ी, बेंत, जेल; इसके आगे उसे सोचने की हिम्मत ही नहीं हुई। यह भय उसके सारे आनन्द को किरकिरा किये दे रहा था। किसी भी तरह उसे ढाढ़स नहीं बँध रहा था।

जुलफिकार की अभ्यर्थना के लिए उसके घर के सब लोग बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे, यहाँ तक कि, जुबेदा के तीन बच्चे नींद छोड़कर 'चाचा' से मिलने को खड़े थे। जुबेदा कभी भी अपने देवर को नहीं चाहती थी, इसका कारण यह नहीं था कि वह सोचती थी कि वह न होता तो उसका पति सारे जायदाद का मालिक होता, बल्कि यह कि, जुलफिकार की चरित्र-हीनता की बात उस तक पहुँच चुकी थी,

और उसे ऐसी बातों से बड़ी घृणा थी, किन्तु अब पासा पलट चुका था। जुलफिकार के सात महीने तक जेल में रहने के कारण जुबेदा इन बातों को भूल गई थी, और वह उसके स्वागत के लिए व्यग्रता से खड़ी थी।

जुलफिकार आठ बजने के बहुत बाद घर आया। जमाल और जुलफिकार की एक दूर के रिश्ते की फूफी थी, माँ के मर जाने के बाद उसीने इनका पालन-पोषण किया था। जुलफिकार की अभ्यर्थना के लिए आज वह भी बहुत कष्ट उठाकर किवाड़ के पास बैठ गई थी, उसके आने की आवाज सुनकर बुढ़िया बाहर की ओर अपनी दृष्टि शक्तिहीन आँखों को फाड़कर देखने लगी। उसकी आँखों से आँसू की कई एक बूँदें गिरीं। दोनों बच्चे चाचा के पास जाकर खड़े हो गये सबसे छोटी बच्ची अपनी माँ का आँचल पकड़कर खड़ी रहीं, और कौतूहल तथा अविश्वास के साथ चाचा की ओर देखने लगी। बच्चों के अतिरिक्त सभी की आँखें आँसुओं से गीली हो उठीं।

जब सबके साथ भेंट-मुलाकात खतमकर जुलफिकार रात दस बजे के समय अपने कमरे में जाकर धीरे-धीरे हुक्का पीने लगा, और उसके चारों ओर धुएँ का एक छोटा-सा बादल बन गया, तो उसने फरार होकर बम्बई जाने के सम्बन्ध में सोचकर देखा कि, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसने सोचकर देखा कि अव्वल तो मुकद्दमा ही नहीं चलेगा, और यदि चले भी तो उसका प्रमाणित होना टेढ़ी खीर है। वह अवश्य ही निर्दोष प्रमाणित होकर छोड़ दिया जायगा। रह गई

यह बात कि इस जघन्य अपराध में अभियुक्त होने के कारण मुसलमान जनता में उसकी इज्जत घट जायगी या नहीं ? इसकी आशंका करना व्यर्थ है । आठ घंटे में ही वह मुसलमान जनता की नाड़ी अच्छी तरह पहचान गया था, वे ऐसी बात पर विश्वास ही नहीं करेंगे, और करने पर भी इसे कोई महत्त्व नहीं देंगे ।

उसने आखिर बम्बई-यात्रा की कल्पना का त्याग कर दिया । भला वह वतन छोड़कर, घर छोड़कर, विदेश में जाकर, पड़ा-पड़ा क्यों सड़े ? नहीं, वह नहीं जायगा, भाग्य में चाहे जो कुछ भी हो, वह कानपुर में ही रहेगा ।

जुलफिकार को आज भाभी के साथ बातें करते-करते यह मालूम हुआ था कि, घरवाले उसकी रिहाई की बात को जानते थे । इसलिए उसकी शादी लगाने के सम्बन्ध में भी लोग इधर-उधर दौड़ रहे थे । इस सम्बन्ध में उसने भाभी से और भी अद्भुत बात यह सुनी थी कि उसके कई महीने हवालात में रहने के कारण शादी के बाजार में उसका दाम बढ़ गया था । मुसलमान लड़कियों के पिताओं के निकट वह अपनी प्रचुर संपत्ति के कारण यों ही लोभनीय था, फिर इस दंगे के मुकद्दमे के कारण जरा और भी ख्याति प्राप्त हुई थी ।

जुलफिकार का मन आनन्द से पूर्ण था । सभी ओर से उसने अच्छी खबर पाई थी । अब वह पहले की तरह आवारे का-सा जीवन नहीं व्यतीत करेगा । अन्य अच्छे लोगों की तरह वह भी एक आदमी होगा । उसके मन में आज आनन्द-ही-आनन्द था, यदि कोई काँटा

उसकी आँखों में खटक रहा था तो केवल वही......। मरने दो, जाने दो, वह इन सब बातों में अब सिर नहीं खपायेगा। झूठी बात है, उसका डर व्यर्थ है। भय का कोई कारण होता तो अब तक वह जेलखाने में न मौजूद होता? आठ बजे तक तो वह भीड़ के संरक्षण में था, किन्तु उसके बाद इतनी देर हो गई, अगर कोई बात होती तो वह अब तक हिरासत में न ले लिया जाता! इससे मालूम होता है, बला टल गई, अल्लाह मालिक है।

ईशाँ का नमाज पढ़कर उसने एक सूरा की आवृत्ति की, उसके बाद वह अपने को एकदम निरापद सोचकर सो गया। ओः कितने दिन के बाद वह इस बिस्तरे पर लेट रहा है, कितने दिन? ओह कितने दिन......!

१०

रिहाई के दूसरे दिन जुलफिकार बड़ा व्यस्त रहा। जुबेदा बार-बार घुमा-फिराकर उससे शादी की ही बात कहती। वह उसकी शादी के लिए इतनी उत्सुकता इसलिये दिखा रही थी कि उसके मत से उसके चरित्र को सुधारने का यदि कोई उपाय था तो यही था। जमाल की भी इसमें राय थी।

कलकत्ते में कारखाने की एक शाखा खोलने के कारण जमाल का काम बहुत बढ़ गया था, वह अकेला इन कामों को सम्हाल नहीं पा रहा था, इसलिये वह चाहता था कि जुलफिकार उसके काम का हिस्सा बटाकर उसका बोझ कुछ हल्का करे। जमाल को यह विश्वास-सा था कि विवाह-बंधन में बँध जाने पर ही जुलफिकार अपनी उच्छृङ्खलता को त्याग देगा और काम का आदमी हो जायगा।

भाभी ने जब बारंबार शादी के लिये कहा, तब जुलफिकार बोला—शादी करने में मुझे कोई उज्र नहीं है, जानती ही हो, इस्लाम में रहबानियत मना है।

जुबेदा ने लड़के का कुर्ता सीते ही सीते एक बार कनखियों से

जुलफिकार की ओर देख लिया। कहाँ इसके पहले तो जुलफिकार इस्लाम के नाम पर कुछ कहता नहीं था, जो कुछ कहता था वह स्वाभाविक मामूली ढंग से ही कहता था। अब यह क्या धुन इसे सवार है? इस्लाम, रुहानियत, अरे बाप रे! बड़ी लंबी-चौड़ी बातें हैं। इन कई महीनों में मानो उसमें जमीन-आसमान का फर्क हो गया यहाँ तक कि यह तबदीली उसकी आवाज़ से भी जाहिर हो रही है।

—तो फिर शादी का बंदोबस्त करूँ? क्यों?

—ना, अभी नहीं······।—गंभीर स्वर में जुलफिकार ने कहा। जुबेदा आश्चर्य-चकित होकर देवर के मुँह की ओर निहारने लगी?

—क्यों?

जुलफिकार चुप्पी साधे रहा, जैसे कुछ सुना ही न हो।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद जुलफिकार ने कहा—देखो भाभी, तुमलोग हमें हमेशा से हेच समझती आ रही हो, मैं हेच था, इसमें शक नहीं, लेकिन तुमलोग जितना सोचती थी, उतना नहीं। तुमलोगों के ऐसा सोचने से क्या हुआ, मैं पतन की ओर भी गहरी खाई में गिरता गया।

—·············।

—ठहर जाओ। कल जनता के बीच में आठ घंटे रहकर, मिलकर तथा उन लोगों से बोलकर, मैंने समझ लिया कि मैं कोई ऐरा-गैरा नहीं हूँ। मैंने समझ लिया कि मैं चाहूँ तो बहुत ऊँचे जा सकता हूँ। तुम अब एक खान साहब तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट की लड़की

के साथ मेरी शादी का बंदोबस्तकर समझ रही हो कि हमारे पुरखे तर गए, लेकिन तब ''''''खैर मैं कुछ कहना नहीं चाहता।

जुबेदा को बड़ा रंज हो आया। उसने इतनी अच्छी सगाई ठीक की, और इसने एक छोटी-सी बात में सब खेल ही बिगाड़ दिया। उसने संदेह किया कि जुलफिकार की इन बड़ी-बड़ी बातों की तह में कुछ और ही गुल खिल रहा है, किन्तु उसने मुँह खोलकर कुछ कहा नहीं। उसकी सुई जल्दी-जल्दी चलने लगी। चतुर मालकिन की तरह उसने विषय बदल दिया। वह जानती थी कि जुलफिकार के साथ जिद करना फिजूल है, फायदा तो कुछ होने का नहीं, व्यर्थ ही मनमुटाव पैदा होगी।

संध्या के बाद जुलफिकार शहर की सैर करने निकला। बहुत-सी बातों को मन-ही-मन तौलता हुआ वह अन्यमनस्क अवस्था में चला जा रहा था। यह कानपुर उसे कितना प्रिय है। वह भारतवर्ष के प्रायः समस्त बड़े शहरों की सैर कर चुका है। किन्तु इस कानपुर के रास्तों, घाटों, गलियों तथा वहाँ की धूलि से उसके प्राणों का जो सम्बन्ध है, वह उसे कहीं नहीं प्राप्त हुआ। यह दुनिया ही कुछ निराली है। यह मानो उसी के मकान की प्रलंबित छाया है। बचपन से वह इसी शहर की गोद में पला है, केवल कुछ दिन भागलपुर में था। इसीकी धूल, मिट्टी, पानी, कीचड़ से ही उसका लालन हुआ है। इस शहर को छोड़कर उसने बंबई जाने की ठानी थी, यह बात सोचकर वह अपनी ही मूर्खता पर हँस पड़ा।

चलते-चलते अकस्मात् उसने ठिठककर देखा कि वह अध्यापक मजूमदार के मकान के सामने तक, बहुत दूर आ गया है, अतः वह तेजी से लौटने लगा। एक बार जल्दीमें उसने मकान के चारों ओर निगाह दौड़ाई। बुढ़िया या सुरमा कोई भी दीख न पड़े। मकान में रोशनी भी जलती नहीं दीख पड़ी। तो क्या मकान खाली है? तो क्या या अल्लाह, वे यहाँ से हटकर कहीं दूसरी जगह चले गये? हृदय में एक टीस, एक मरोड़ लेकर वह घर लौटने लगा।

दूसरे दिन तड़के ही वह फिर उसी ओर गया, किन्तु इसबार वह भूलकर इधर नहीं आया था। वह जहाँ जा रहा था, उसका रास्ता ही उधर से पड़ता है, इसलिए वह उस ओर से जा रहा था। किन्तु जब इधर आ ही गया तो इतना पता लगाने में कोई हानि तो थी ही नहीं कि वह बंगाली-परिवार यहाँ रहता है या नहीं। अवश्य इस बात का पता लगाने के लिए उसे कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा, क्योंकि सामने के बरामदे में उसने बुढ़िया को देखा। कहीं वह उसे पहिचान न ले, इसलिए वह जल्दी से मुँह फेरकर दूसरी ओर निकल गया, किन्तु उसका दिल न जाने क्यों बाँसों उछलने लगा। ओह, तो वह परिवार यही है। उसकी आँखों में, मुँह में, सारे शरीर में, आनंद की एक लहर-सी दौड़ गई।

दिन के समय जुलफिकार इस रास्ते से होकर निकलने में भय खाता था कि कहीं कोई उसे पहिचान न ले। यद्यपि वह जानता था कि अब उस पर मुकद्दमा चलना कठिन है, फिर भी उसे एक अकारण भय-सा लगता था। किन्तु संध्या के बाद ही वह एक बार इस मकान के सामने

से चोर की भाँति अवश्य निकलता था। मानो कोई अव्यक्त शक्ति उसे दिन भर उसी ओर आकर्षित करती रहती थी। प्रति दिन संध्या समय इस ओर एक बार चक्कर लगा जाना उसका नित्यकर्म हो गया।

जुलफिकार भलीभाँति जानता था कि सुरमा सभी तरह से उसकी पहुँच के बाहर है, वह किसी भी तरह उसे मिल नहीं सकती। फिर भी उसने आना-जाना जारी रक्खा। किन्तु एक दिन भी उसे सुरमा दीख न पड़ी, जब देखता था, बुढ़िया ही दिखाई पड़ती थी और उसे देखकर वह क्रोध से भर जाता था।

इधर जुलफिकार तबलीग तथा दूसरी साम्प्रदायिक संस्थाओं में भाग लेने लगा। थोड़े ही समय में वह इतना प्रभावशाली हो उठा कि कानपुर के मुसलमानों के सभी पुराने साम्प्रदायिक नेताओं को यह एक जबर्दस्त तथा खतरनाक प्रतिद्वन्दी प्रतीत होने लगा।

जुलफिकार ने थोड़े ही दिनों के अन्दर साम्प्रदायिकता-पूर्ण वक्तृत्व-कला की सारभूत बातों की अभिज्ञता प्राप्त कर ली, और बड़े उत्साह से उन्हें काम में लाने लगा। उसने देखा कि त्वरितगति से फैलते हुए समाजवाद के कुछ खास नारे हैं। जैसे कांग्रेस बुर्जोया संस्था है, गांधी आदि नेता भारत में साम्राज्यवाद के मित्र तथा एजेंट हैं, बहुत कहा जाय तो वे संस्कारवादी हैं इत्यादि। उसने देखा कि इन्हीं नारों के द्वारा एक होहल्ले की सृष्टिकर यह मत धीरे-धीरे एक पुष्ट दल में परिणत हो रहा है। इसलिए वह भी समाजवादियों का अनुकरणकर कहने लगा—कांग्रेस हिंदुओं की संस्था है, उसमें जो मुसलमान हैं, वे हिंदुओं से तनख्वाह पाते हैं, गांधी आदि नेता हिन्दू-राज चाहते हैं, स्वराज के

मानी हिन्दू-राज इत्यादि; और इन बातों के फलस्वरूप उसे अच्छी सफलता मिलने लगी। हिन्दी-भाषियों के राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी आंदोलन में भी उसने हिन्दूसत्ता की गन्ध पाई।

अकल्पनीय थोड़े समय के अन्दर जुलफिकार अली कानपुर का एक प्रख्यात मुसलमान-नेता हो गया, और उसका मकान सम्प्रदाय-वादियों का एक प्रधान केन्द्र के नाम से दूर-दूर तक मशहूर हो गया। जुलफिकार से भी अधिक चतुर बहुत से सम्प्रदायवादी कानपुर में थे, किन्तु उनके पास धन नहीं था, इसलिए उनकी दाल न गल सकी, और जुलफिकार उन्हीं लोगों की आँखों के सामने साम्प्रदायिकता-वादियों का नेता तथा जननायक हो गया।

११

वकीलों ने बार-बार मना किया था कि छोटे तथा इब्राहीम के मामलों की अपील हाईकोर्ट में न की जाय, किन्तु जो लोग आंदोलन की कमाई खाते हैं वे भला कब इन हितकर सलाहों को सुननेवाले थे ? वे तो इसी मौके से फायदा उठाकर कुछ नाम कमा ले रहे थे, कुछ तो इस प्रचार-कार्य में इसलिए शरीक थे कि चन्दों के रुपयों पर उनकी लोलुप दृष्टि थी। बात-ही-बात में अपील लड़ाने के लिए अंजुमन का जन्म हो गया, और एक फंड भी खुल गया। देश की आबो-हवा उस समय साम्प्रदायिकता के विष से विषाक्त हो उठी थी, इसलिये देखते-ही-देखते इस अंजुमन ने अच्छा धन भी बटोर लिया। जुलफिकार इस अंजुमन का मंत्री बनाया गया, उसने अपनी जेब से अंजुमन के लिए सौ रुपए दिए, इसके अतिरिक्त जमाल मुहम्मद के द्वारा दो सौ रुपए दिलवाए। यह बात सही थी कि जुलफिकार चन्दे के रुपए मारने की नीयत से इस आंदोलन में शरीक नहीं हुआ था। वह तो केवल नाम का भूखा था।

एक पुराने वकील ने कहा—बाबा, इस मुकद्दमे की अपील मत

करो, लेने के देने भले ही पड़ जायँ, कुछ बनने का तो है नहीं। हाईकोर्ट में कहीं यह मुकद्दमा किसी हिंदू जज के हाथों में पड़ गया, तो बस हो चुका, बधिया बैठ जायगी।

चन्दे का रजिस्टर वकील की ओर बढ़ाते हुए आन्दोलनकारियों में से एक उत्साही युवक ने कहा—अजी खाँ साहब, लीजिए, जो कुछ देना हो दीजिए, फजूल बातों का बतंगड़ न बनाइए। जो कुछ किया जा रहा है बड़ी सोच-समझ के बाद किया जा रहा है—कहकर वह जरा ठहर गया, फिर बोला—जनाब, आपकी राय में शायद मौलाना इब्राहीम तथा छोटे मियाँ के साथ इन्साफ किया गया। क्यों?

—इन्साफ? मैं कहता हूँ उनके साथ जज ने तरफदारी की, गवाही वगैरह देखने से तो यही जाहिर होता है कि वे आसानी से कालेपानी की सैर को भेजे जा सकते थे—बहुत झुंझलाहट के साथ बुड्ढे वकील ने कहा, उनके कान की जड़ें लाल हो रही थीं।

—उनको फाँसी दी जाती तो आप शायद खुश होते, क्यों?—झगड़े के लहजे में एक युवक ने कहा, फिर अपने साथियों की ओर मुड़कर बोला—यही आपकी मुसलमानियत है। खूब रहा? इस्लाम जिनकी वजह से जिंदा है, आप कहते हैं कि सात साल की सजा देना उनके साथ रियायत करना है। ऐसे तो आप मुसलमान हैं!

साथ-ही-साथ उसने चन्दे का रजिस्टर वकील साहब की ओर और भी ढकेल दिया। बुड्ढे ने देखा कि इन आदमियों से तर्क करना फिजूल है, व्यर्थ का अपमान हाथ लगेगा। इसलिये उन्होंने रजिस्टर में अपने

नाम के सामने जल्दी से ५) लिख दिया, और हाथों हाथ एक पाँच रुपये का नोट देकर उसी वक्त आंदोलनकारियों को विदा कर दिया।

इस प्रकार से अंजुमन के लिए कुछ तो डर दिखलाकर और कुछ राजी से चंदा वसूल होने लगा। आज जुमा के नमाज के बाद सार्वजनिक रूप से जुलफिकार ने चन्दे के लिये अपील की। उसे कोई पाँच सौ के करीब तो नगद मिले, और बहुतों ने बहुत कुछ वादे किए।

जुलफिकार की आज बाँछें खिल उठीं, चारों तरफ सफलता थी। संध्या के पहले वह अकेला अंजुमन के दफ्तर से लौट रहा था।

रास्ते में अकस्मात् सुरमा से उसकी भेंट हो गई, कोई किसी से कतराकर निकल न सका।

जुलफिकार की प्रफुल्लता क्षण भर में ही काफूर हो गई। वह इतना घबड़ा गया कि उसका गला सूखने लगा। सुरमा ने उसकी तरफ रूखे-पन और घृणा से देखा, मानों वह अभी अपना तृतीय नेत्र खोलकर उसे भस्म करने जा रही हो। उस समय सूर्य पश्चिम आकाश के कोने में एक प्रचंड ज्योति के भग्नावशेष की भाँति प्रतीक्षा कर रहा था। मिलों के भोंपू मिलकर आर्तनाद कर रहे थे।

उस समय जुलफिकार की ऐसी अवस्था हो रही थी जिसे कहते हैं, काटो तो लहू नहीं। कोई कमजोर एंजिन पूर्ण वेग से चलते-चलते यदि अकस्मात् एक क्षण में रुक जाय तो उसके अन्दर के कल-पुरजों का जो बुरा हाल होता है, जुलफिकार की भी वही अवस्था हुई। उसके मन में भावों का आवेग इस प्रकार उमड़ पड़ा कि उसको समझने का

अवसर ही नहीं मिला कि यह क्षोभ है, लज्जा है, या भय। सुरमा का भी हाल बेहाल हो रहा था, फिर भी वही पहले बोली—मुझे तुम्हारी हत्या करने की इच्छा हो रही है, पामर, नराधम कहीं का! मानव-जाति का यह दुर्भाग्य है कि तुम्हारी तरह नरपशु जेल में चक्की न चलाकर भले-चंगे आदमियों में आजादी से घूम रहा है।

जुलफिकार का गोरा चेहरा पीला पड़कर एकदम सफेद-सा हो उठा। वह भीतर ही भीतर काँप-सा उठा। और सुरमा की ओर करुण दृष्टि से निहारने लगा, उसकी आँखें चमक रहीं थीं। चाहे जिस कारण से हो, सुरमा की झिड़कियाँ सुनते-सुनते उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह जितना डाँट रही है, उतना उसके दिल में नहीं है, वह जितना कह रही है, सब अर्थ सहित ही नहीं कह रही है। सुरमा कहती जा रही थी—बदकिस्मती की बात यह है, तुम्हारे पाप का फल तुम्हें नहीं भोगना पड़ा, उसका फल मैं अपने शरीर में धारण कर रही हूँ। वह मेरे खून से पलकर बढ़ रहा है। उसे मैंने नहीं बुलाया है, उसकी मैंने इच्छा नहीं की, उसको मैं नहीं चाहती। परन्तु वह मेरी ये बातें तनिक भी नहीं जानता, वह बड़े आराम से क्षण-क्षण में चारों तरफ और भी हाथ-पैर फैलाता जा रहा है। इतने दिनों से क्यों मैं उसका बोझ लादती आ रही हूँ, यह मैं नहीं कह सकती, यदि मैं उसकी हत्या कर डालती तो उसका पाप मेरे ऊपर पड़ता—यह बात नहीं, नराधम, पाप तुम्हीं पर पड़ता, हाँ तुम्हीं पर। मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि जिसका जन्मदाता तुम्हारी तरह दुरात्मा है, उसको जीवनरूपी वरदान से वंचित करना एक पुण्य है, क्योंकि जीवन तो उसके लिए अभिशाप की तरह है।

जीवन तो वहाँ जड़ से भी खराब है। मैंने उसको बचाया है, मैं उसे बचाऊँगी। नहीं, भूल न समझ बैठना। ऐसा करने में मैं दया से परिचालित नहीं हो रही हूँ। मैं उसको बचाऊँगी, और जब उसकी हत्या करना भ्रूणहत्या न होकर शिशुहत्या तथा नर-हत्या हो जायगी, तब मैं उसे ले जाकर तुम्हारे घर पर पटक दूँगी। उस समय यदि तुम उसकी हत्या करो तो तुम्हारे अपराधों के ढेर में एक और महान अपराध की वृद्धि होगी, यदि उस समय तुम्हारी हिम्मत पड़े तो उसकी हत्या कर डालना। और यदि ऐसा न कर उसे पालना स्वीकार करो तो वह तुम्हारे सामने तुम्हारे पापों के चलते-फिरते चित्र की भाँति रहकर तुम्हें हमेशा खटकेगा, और पश्चात्ताप की धीमी आँच में तुम्हें दग्ध करता रहेगा। तुम पर यही मेरी प्रतिहिंसा है—इतना कहकर वह पागलों की तरह ठहाका मारकर हँस पड़ी। सुरमा ने जो बातें कही थीं, विशेषकर बच्चे की प्राणरक्षा के कारण तथा उद्देश्य के सम्बन्ध में जो बातें उसने कही थीं, वे उसी वक्त जीभ पर आई हुई थीं। ये बातें एक प्रेरणा की तरह कहते-ही-कहते उसको सूझ गईं। इस सूझ से उसको सुख ही हुआ।

जुलफ़िक़ार सुनता जाता था, सुनता जाता था और जितना ही वह सुनता था, उतना ही वह सोचता था, यह नारी कितनी महिमामयी है, उसके कहने का ढंग कितना सुन्दर है, एक-एक बात जैसे एक-एक नये जगत् का प्रकाश है। कैसे उसने अपने जघन्य तथा कलुषित हाथों से उसे स्पर्श किया था? कैसे? क्योंकर? जुलफ़िक़ार का मन जितना ही इस बात की गवाही देने लगा कि इस अत्याचार-पीड़ित नारी की

तुलना में वह एक पशु मात्र है, उतना ही उसको प्राप्त करने के लिए उसकी इच्छा प्रबल होने लगी। वह अनुभव करने लगा कि उसको न पाने पर उसकी जीवन-नौका का पतवार खो जायगा और वह अथाह अपार समुद्र में भटकता रह जायगा।

जुलफिकार ने जब जरा आत्मस्थ होकर अपने चारों ओर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि सुरमा न जाने कब गायब हो गई। सूर्य उस समय संपूर्ण रूप से अस्ताचलगामी हो चुका था, यद्यपि उनकी ज्योतिर्मंडित आभा अभी पूर्व के आकाश में एक चमकते हुए चरण-चिह्न की भाँति प्रोज्ज्वल थी। रास्ते की बत्तियाँ एक-एक करके जलने लग गई थीं।

जुलफिकार आज डाँटा गया था और इतना डाँटा गया था जितने की उसे आशंका न थी; फिर भी आज उसका दिल हलका हो गया था। मानो आज एक भारी पत्थर का बोझ उसके हृदय पर से उतर गया। तो फिर उसे कुछ आशंका करने की आवश्यकता नहीं है? पुलिस में उसे नहीं दिया जायगा। मानो उसकी साँस फिर से चलने लगी, और वह बच गया। या अल्लाह, तुमने मेरी खूब सुनी, मगर एक और मेहरबानी इस बन्दे पर हो जाय तो इसकी जिन्दगी फिर एक बार बन जाय। वह मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा।

वह उस दिन खुशी-खुशी घर लौटा। ईशाँ की नमाज उसने बड़ी देर तक पढ़ी।

दूसरे दिन वह क्लीन सेफ होकर पूरा बंगाली बन बैठा, और वैसा ही रहने लगा। उसे इस तरह का रंग बदलते देखकर बहुत से लोग दंग रह गए। जमाल महम्मद मुस्कराकर रह गए, और जुबेदा ने

भौंहें चढ़ा लीं। उसके भतीजे तो उसे इस नये रूप में पहिचान ही नहीं पाए। कट्टर मुसलमानों ने जरा अविश्वास से भरी हँसी हँस दी।

सुरमा के साथ जुलफिकार की इसके बाद भी दो एक बार भेंट हुई, किन्तु वह कतराकर यों चली गई जैसे पहिचानती ही न हो। इच्छा से जर्जर जुलफिकार के हृदय पर इस बात से बड़ी चोट आई। सार्वजनिक नेता के रूप में सफलता मिलते रहने पर और अपना नाम प्रतिदिन बढ़ते रहने पर भी उसके दिन अशांति तथा मानसिक कष्ट में बीतने लगे।

वह फिर गुप्त रूप से जरा-जरा शराब पीने लगा।

१२

यथासमय सुरमा को एक पुत्र हुआ।

सूतिकागृह में धाय और बुढ़िया नौकरानी उपस्थित थीं। प्रसव के बाद सुरमा ने पूछा, उसके स्वर में प्रसव-वेदना-जनित कँपकँपी स्पष्ट थी।

क्यों, लड़का है या लड़की?

बुढ़िया धाय से रोते हुए बच्चे को लेकर बोली—लड़का देखने में बिलकुल बाबू की तरह हुआ है। वही मुँह, आँख, नाक, सभी। लाओ धाय इसे साफ कर दो, मैं जरा इसे बाबू को दिखा लाऊँ—कहकर वह उठने लगी।

सुरमा की निस्पन्द तथा थकावट से चूर देह अकस्मात् क्रियाशील हो गई, और उसने जल्दी से उठकर बुढ़िया से लड़के को छीन लिया। बुढ़िया को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे सुरमा ने उसे जोर से एक धक्का दिया, बड़े कष्ट से उसने अपने को गिरते से सम्हाला।

—चल यहाँ से पाजी औरत! चली है बाबू को लड़का दिखाने। निकल यहाँ से।

धाय अवाक् रह गई, उसने सुरमा को झिड़ककर कहा—इतना जोश में न आओ, इससे बच्चे को नुकसान पहुँच सकता है।

बुढ़िया कहने को तो इतनी बात कह गई, किन्तु उसकी समझ में नहीं आया कि मामला क्या है। किसी भी प्रकार उसकी समझ में नहीं आया कि आखिर उसने कौन-सी बात ऐसी कह दी, जिससे सुरमा इस तरह क्रोधित हो उठी। वह अपने आप गिड़गिड़ाती हुई निकल गई—जितने ही दिन जी रही हूँ उतनी ही नई बातें देख रही हूँ, हरे हरे ! न मालूम और क्या-क्या देखना बदा है। लड़के को ले जाकर उसके बाप को दिखलाती, इसमें कौन-सी बड़ी भारी गलती मैंने कर डाली। अपने वक्त में मैंने भी बहुत से लड़के ब्याये हैं, पर सौरी के घर में इस तरह आपे से बाहर कभी नहीं हुई। इतनी उम्र में तो जाकर बाँझ का नाम छूटा, तिसपर यह गरूर ! जो तैंने एक लड़का ब्याया तो किसी का सिर खरीद लिया ? तेरा लड़का है, तेरा ही वंश चलेगा, मेरे लिये बड़ा होकर कोई सिंहासन नहीं बनवा देगा। सब जानती हूँ······, कुछ कहती नहीं हूँ, जो मेरी जगह दूसरी कोई नौकरानी होती तो मजा मालूम होता।

वह सीधे जाकर अध्यापक के कमरे में घुस गई। अध्यापक हाथ में पुस्तक लिए हुए मानो उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उत्तेजना के मारे वे जल्दी से कुरसी से उठ खड़े हुए, और पूछने लगे—क्या हुआ ? मुर्दा है या जिन्दा ?

बुढ़िया अपनी जिन्दगी में बहुत से सूतिका-गृहों में मौजूद रह चुकी थी, और उसने बहुत से पिताओं को लड़का या लड़की होने का संवाद

भी दिया था, किन्तु ऐसे कुलक्षण-युक्त प्रश्न उसे कहीं सुनने को नहीं मिले। इस मकान की सभी बातें कुछ अजीब हैं, सभी बातों में मनहूसियत की एक छाप-सी है। अध्यापक बुढ़िया के मुँह की ओर इस प्रकार देख रहे थे मानो उसीके उत्तर पर उनका जीवन-मरण निर्भर है। बुढ़िया ने सोचा तीस साल की उम्र में पिता होने का मौका आया, इसलिये यह उदासीनता है, उसने सांत्वना के रूप में कहा—मारें उसके दुश्मन, वह क्यों मरने लगा। बाबू, तुम्हें राजा बेटा हुआ है, मेरे सिर पर जितने बाल हैं, बच्चे की उमर उतनी हो।

अध्यापक धम से निराश की भाँति कुरसी पर बैठ गए, मानो बड़ी उलझन में पड़ गए हों। वह इतने दिनों से यह आशा बाँधकर निश्चिन्त थे कि भाग्य इस समस्या का कोई-न-कोई उचित निपटारा करेगा, आशा करते-करते उनको विश्वास-सा हो चला था कि भाग्य-चक्र इस मामले में उनके अनुकूल आवर्तित होगा, किन्तु बुढ़िया की इस बात से उनकी आशा पर एकदम हरताल फिर गया। फिर भी वही समस्या सामने आई, करना या न करना? To be or not to be is the question. तो क्या वे आखिर इस नाम-गोत्र-हीन लड़के को अपना पुत्र कहकर स्वीकार कर लें?

बुढ़िया 'बखसीस' के लिये खड़ी थी, वह कहने लगी—हुबहू तुम्हारी ही तरह हुआ है, वही मुँह, वही आँखें, वही नाक, वही सब कुछ वही.........।

अध्यापक की आँखों में क्षणभर के लिए आशा की एक क्षीण रेखा खिंच गई, बुढ़िया की बातों का क्या अर्थ है, उसको पूर्ण रूप

से हृदयंगम करने के लिए वे उसके मुँह की ओर देखने लगे, पर कुछ क्षण के बाद ही वे मौन, निस्तब्ध और उदास बन बैठे।

बुढ़िया ने देखा कि बाबू अन्यमनस्क हैं, इसलिए उसने कहा—बाबू, कुछ बखसीस मिल जाय......!

ओह—कहकर अध्यापक जैसे चौंक उठे, और कोट की जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकालकर बुढ़िया को दे दिया। बुढ़िया लड़के और उसके माँ-बाप की जोर-जोर से चिरायु की कामना करती हुई खुशी-खुशी चली गई। उस समय सचमुच उसके हृदय से असंख्य आशीर्वादों की झड़ी लग गई।

अध्यापक बड़ी देर तक कुरसी पर बैठे-बैठे दो और दो चार कर, इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि जब सुरमा ने जिन्दा लड़का प्रसव ही किया है, और वह उनकी स्त्री है, तो वे उसे अपनी ही संतान मान लेंगे। किसी भी हालत में वे जगहँसाई नहीं होने दे सकते। उससे विपत्ति ही है, लाभ कुछ नहीं, केवल शांति भंग होगी, उससे किसी का लाभ नहीं होने का। उन्होंने सोचकर देखा कि इस सारे मामले में सुरमा का दोष ही क्या है? उसने भ्रूणहत्या न करने की धुन में इतना कष्ट उठाया, और भविष्य में उठाने के लिये प्रस्तुत है, तो क्या एक जीव की रक्षा के लिये मैं इतना भी नहीं कर सकता कि चुप होकर रहूँ। मुझे कुछ और कहने के लिये तो कोई कह नहीं रहा है। जाने दो, जो कुछ भी होगा देखा जायगा, मैं चुप रहूँगा। नैतिक दृष्टि से भी उन्होंने इस मामले की तह तक जाकर देखा तो अपनी निरपत्ति को ही ठीक पाया। तर्क शास्त्र की दृष्टि से अपनी निष्पत्ति को यथार्थता के सम्बन्ध में निःसंदेह

होने पर भी वे अपने संकल्प से पूर्ण सुखी न हो सके। कहीं पर कोई बात कुछ खटक रही थी। किन्तु इससे कुछ होता-जाता नहीं, तर्क-शास्त्र के द्वारा वे जिस सिद्धांत पर पहुँचे थे, उसी पर अटल रहे।

उन्होंने अपने इस नवीन संकल्प के सम्बन्ध में सुरमा से कुछ भी नहीं कहा। बात यह थी कि उसकी कोई आवश्यकता ही उन्हें नहीं मालूम पड़ी। मानो इस बात से उनके पुरुषत्व को कहीं पर आँच आती थी। उन्होंने सोचा—सुरमा कोई बच्ची तो है नहीं कि न कहने पर इतनी-सी भी बात न समझेगी।

उधर सुरमा बच्चे को गोद में पाकर सोचने लगी कि वह अनि-मन्त्रित, अनाहूत, तथा बलपूर्वक उसके ऊपर लादा गया ही सही, किन्तु है तो वह उसीका रक्त-मांस, उसी के कलेजे का टुकड़ा। नहीं, वह उसे उठा न देगी, विशेषकर उस पामर को तो कभी नहीं। इसके लिए यदि उसे निर्यातन तथा उपहास की मार सहनी पड़े, स्वजन और समाज त्यागना पड़े और बस्ती के बाहर सरपत छाकर कोढ़ी की तरह अलग झोपड़ी में रहना पड़े तो उसे वह भी स्वीकार है। परन्तु वह इस निष्पाप तथा असहाय बच्चे को इस विपुला पृथ्वी पर अकेला न छोड़ देगी। रहा बच्चे का जन्मदाता, वह उसका कोई नहीं है, उसके हाथ में बच्चे को सौंपने का अर्थ उसे कुएँ में डाल देना है। कोई यदि उसका अपना है तो वही है। यह बात सोचकर सुरमा आनन्द से गद्-गद् हो उठी, और बार-बार बच्चे को चूमने लगी। धाय ने इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं किया, वह जानती थी कि बहुत-सी माताएँ बड़ी भावुक होती हैं।

१३

सुरमा ने आखिर यह निश्चय किया कि वह जिस कारण से भी हो, बच्चे को अपने से अलग नहीं करेगी।

सुरमा अब मकान के बाहर नहीं जाती, सारे दिन यहाँ तक कि सारी रात लड़के की परिचर्या में व्यतीत होने लगी। उसके समस्त हृदय तथा ध्यान को इस जीवित मांस-पिंड ने अपने अधिकार में कर लिया। पति के साथ उसका सम्बन्ध बहुत पहले ही टूट चुका था, अब तो ऐसा होने लगा कि भेंट हुए पाँच-पाँच छः-छः दिन हो जाने लगे। अध्यापक मकान में आते थे, खाते थे, सोते थे, किन्तु न तो मकान की किसी बात में दखल देते थे, न कुछ देखते थे। सुरमा भी कुछ नहीं देखती थी, फिर भी सब काम चलते जाते थे। मानो अपने आप ही सब कुछ चल रहा था।

अध्यापक निश्चय कर लेने पर भी इस लड़के के जन्म के बाद से अपने अध्ययन तथा गवेषणाओं में पहले की भाँति मन नहीं लगा पाते थे। रात-दिन जैसे कोई भयानक चिन्ता उन्हें डसती-सी रहती थी और वे छत की ओर घूरते हुए सिगार पीते पाये जाते थे।

सुरमा आड़ में रहकर कभी-कभी अध्यापक की इन बातों को देखकर गम्भीर हो जाती थी। फलस्वरूप बच्चे के सम्बन्ध में उसकी सावधानी और बढ़ जाती, तथा वह उसे कभी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती थी।

एक दिन सुरमा किसी कार्यवश तिमंजिले पर गई थी। बच्चा अपने नन्हें से बिस्तर पर पड़े-पड़े, धीरे-धीरे हाथ-पैर फेंक रहा था, और धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से चारों ओर के जगत् के साथ अपना परिचय बढ़ा रहा था। उसके शरीर की वृद्धि के साथ उसका ज्ञान भी एक-एक डग आगे की ओर बढ़ रहा था। देखते-ही-देखते बच्चे का मुँह ऐसा भाव धारण कर रहा था, जैसे वह हँस रहा हो, फिर क्षण भर बाद उसके चेहरे की रेखाओं पर ऐसे बल पड़ जाते थे, कि जैसे वह अभी-अभी रो पड़ेगा, किन्तु सच पूछा जाय तो न तो वह हँस रहा था न रो रहा था, वह तो सीख रहा था।

अध्यापक इसी तरफ से होकर निकल रहे थे, बुढ़िया तो बार-बार उनसे कहा करती थी कि बाबू, लड़का हूबहू आप ही की शक्ल का है, आज बच्चे को अकेला पाकर उन्हें इच्छा हुई कि इस बात की सत्यता की जाँच करें। बच्चे को अकेले पड़ा देखकर उनके हाथ-पैर जैसे ऐंठने लगे, यही मौका है। हाँ, एक अदम्य आशा से हृदय को बाँधकर वे लड़के की ओर बढ़े। शायद सुरमा ने भूल की है। ऐसा हुआ तो फिर तो सब बिगड़ा हुआ बन जायगा। शायद बलात्कार की बात ही कल्पना हो।

वे पास जा झुककर बच्चे को देखने लगे। अजी, सचमुच यही

बात है। आनन्द से उनका सारा शरीर सिहर उठा। यह तो हूबहू उनके बचपन के फोटो की तरह है। बचा अपनी स्निग्ध आँखों को खोलकर उनकी ओर देखने लगा। उसने देखा कि यह वह नहीं है जो उसे प्यार करती है, गुदगुदाती है, स्तन-पान कराती है और थपकियाँ दे-देकर सुलाती है। नहीं, यह वह नहीं है, यह कोई और है। बच्चे ने थोड़ी देर तक टकटकी बाँधकर अध्यापक की ओर देखा, फिर उसने निश्चित रूप से समझ लिया कि यह वह नहीं है। तो क्या कोई भय की बात है? बचा उन्हें ध्यान से देखने लगा। ना, नहीं है, खिलखिलाकर हँसने लगा।

अध्यापक को कुछ प्रेरणा सी हुई कि बच्चे के सिर पर जरा हाथ फेरें, वे हाथ फेरने लगे। बच्चे ने जब इस पर कोई आपत्ति नहीं की तब उन्होंने उसे गोद में उठा लिया। बच्चे ने गोद में जाने में भी कोई आनाकानी नहीं की।

इस प्रकार कितना समय बीता, पता नहीं, इतने में सुरमा अपना काम समाप्तकर लौटी। उसने जो अपने पति को लड़के को गोद में लिये हुए देखा तो उसने आव देखा न ताव, पति को कुछ कहने का भी मौका नहीं दिया, झपटकर बच्चे को उनसे छीन लिया, और नागिन की तरह गरजकर बोली—किसने तुम्हें यहाँ बुलाया? भ्रूणहत्या करने को नहीं मिला, इसलिए तुम्हारी वैज्ञानिकी आत्मा कदाचित् तृप्त नहीं हुई और इसीलिए तो तुम बच्चे की हत्या करने नहीं आये हो?

इस खींचा-खींची में बच्चे को चोट पहुँची, इसलिये वह जोर से रो उठा।

सुरमा ने तुरत बच्चे के मुँह को खोलकर परीक्षा की, फिर उसके सारे शरीर की भी बड़े ध्यान से परीक्षा की कि कहीं आलपीन वगैरह गड़ाने का तो कोई चिह्न नहीं है। दुःख के मारे सुरमा का मुँह पीला पड़ रहा था, इतने दिन तक सम्हालकर और अपने पहरे में रखकर अन...... । अध्यापक विस्मय के मारे हतबुद्धि-से हो गए। यद्यपि वे किसी बुरे उद्देश्य से नहीं आये थे फिर भी इस प्रकार से सन्देह किये जाने पर अकारण लज्जा के मारे उनके बदन पर जैसे काठ मार गया।

अध्यापक मजूमदार आज हर बात के लिए तैयार हो गए, उन पर आज कुछ सनक-सी सवार हो उठी। सुरमा की बातों की चोट के धक्के को सम्हालकर उन्होंने गम्भीर-स्वर में कहा—देखो सुरमा, तुम गलती पर हो। तनिक उस बच्चे के मुँह की ओर तो ध्यान लगाकर देखो। उसकी आँखें, मुँह, भौहें सब ठीक-ठीक मेरी तरह हैं न ? तुम एक दुष्कल्पना के वशीभूत होकर हमें स्त्री तथा पुत्र दोनों से एक ही साथ क्यों वंचित करने पर तुली हो। दो मेरे लड़के को मेरी गोद में—कह-कर उन्होंने लड़के को गोद में लेने के लिये हाथ बढ़ाया।

इस समय कोई भी साधारण स्त्री इस अवसर का समुचित रूप से उपयोग करती। पति की श्रद्धा, प्रेम, समाज, सोने का संसार सब एक ओर है, और दूसरी ओर एक कटु सत्य है जिसको कोई नहीं चाहता, जिसकी किसी को आवश्यकता नहीं है, जो मिथ्या से भी निकृष्ट है। जुल्फिकार को इस सत्य की आवश्यकता न थी, क्योंकि इससे प्रमाणित होता था कि वह नर रूपधारी पशु है, सुरमा के स्वार्थ के भी यह अनु-कूल नहीं जाता था, क्योंकि इससे उसके सतीत्व पर धब्बा लगता था,

बच्चा इस सत्य को नहीं चाहता था; क्योंकि इस सत्य के अनुसार वह जारज सिद्ध होता था, रहे अध्यापक, उनको तो यह सत्य फूटी आँखों भी न भाता था। समाज भी इस सत्य से जी चुराना ही पसन्द करता, इस हालत में सत्य किस काम का था ?

किन्तु सुरमा तो मानो एक अखंडनीय नियति से परिचालित हो रही थी, तभी तो उसने बड़े जोर से इसी सत्य को पकड़ा था, उसने इस प्रकार आसानी से भाग्य के साथ पीछे के द्वार से समझौता करना अस्वीकार कर दिया। उसने दृढ़ता के साथ कहा—भूल है, महा भूल है, चेहरे के सादृश्य की जो बात कह रहे हो, यह देखो, मिलाकर देखो—यह कहकर उसने आलमारी से निकालकर किसी मुसलमानी अखबार में छपा हुआ, जुलफिकार का फोटो, अध्यापक के हाथ में दिया। सचमुच जुलफिकार के फोटो के साथ अध्यापक के फोटो का आश्चर्य-जनक सादृश्य था। जुलफिकार के फोटो में एक ही बात का प्रभेद प्रतीत होता था। इसके अतिरिक्त पहली ही दृष्टि में उसकी एक और बात आकर्षित करती थी, वह यह कि उसके भौंह जुड़े हुए थे तथा सिर कुछ उभरा हुआ था।

अध्यापक चुपचाप फोटो देखने लगे, मानो आँखों से तौल रहे हों। इतने दिन जिस रहस्य के उद्घाटन में असमर्थ हो, वे मन ही मन खीझे हुए रहते थे, आज उसका पट उनके निकट खुल गया। कितनी ही बार उन्होंने चाहा कि सुरमा से उसकी हुलिया पूछें, पर यह प्रश्न बार-बार उनकी जीभ की नोक पर आकर रह जाता था। उस आदमी के विषय में जानने से उनका कुछ बनता नहीं दीखता था, फिर भी न जाने क्यों

एक विचित्र कौतूहल उनके अन्दर रह-रहकर जैसे चीख उठता था। ऐसी अजीब परिस्थिति में आज उनका वह कौतूहल तृप्त हो गया।

क्षण भर के लिए उनके ओठों पर एक परितृप्ति की हँसी खेल गई, किन्तु फिर तुरत ही उनकी भौंहें तन गईं। फोटो को अन्यमनस्कता के साथ मसलते-मसलते वे कमरे से बाहर चले गए। सुरमा भय से अवाक् होकर उनके मुँह की ओर ताकती रह गई। फोटो को उनसे लौटा लेने का उसे साहस न हुआ, बच्चे का रोना उसी तरह जारी था। बच्चे के रोते रहने पर भी आज पहली बार सुरमा का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट न हुआ। वह तो घोर मानसिक अशांति में निमग्न हो रही थी।

अध्यापक ने अपने कमरे में जाकर मसली हुई तस्वीर को सीधी-कर उसे फिर से देखना प्रारम्भ किया। इस बार उनका सन्देह जाता रहा। यह वही है। भागलपुर में वे इसके साथ एक मुहल्ले में रह चुके हैं, बड़ा दुष्ट छात्र था। उसका नाम याद आ-आकर भी नहीं आया। उन्होंने फोटो को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। बाद में वे फाड़े हुए टुकड़ों को ध्यान से देखने लगे। काश, फोटो के असली आदमी को इसी तरह आसानी से टुकड़े टुकड़े करके अपने दिल से निकाल दिया जा सकता।

१४

पति का भोजन करीब-करीब समाप्त हुआ देखकर जुबेदा बोली—अजी सुन रहे हो ?

जमाल उस समय मन-ही-मन सोच रहा था कि कलकत्ता-शाखा से आए हुए व्यापारिक-पत्र का क्या उत्तर दिया जाय। पर, उसकी बातें सुनकर दूध का कटोरा उठाते हुए बोल उठा—हाँ···!

पति के इस प्रकार बिना सोचे-समझे उत्तर देने पर जुबेदा नाराज हो उठी, इसके सिवा आज नाराजी के और भी बहुत-से कारण थे, किन्तु उसने देखा कि पति दूध पीने में दत्तचित्त हैं, इसलिये वह गुस्सा सम्हालकर चुप हो गई। पति जिस ढंग से दूध पी रहे थे उसे देखकर जुबेदा के चेहरे पर एक हलकी-सी हँसी आ गई। यह मोटी मलाईवाला दूध भी जैसे उसके पति की नित्य की वस्तु थी, वैसे ही यह हँसी भी जुबेदा की नित्य की वस्तु थी। पति को नित्य इस तरह दूध पीते देख-कर उसे न जाने क्यों हँसी आ जाती। आज भी जुबेदा इस हँसी को रोक न सकी।

जब जमाल हाथ-मुँह धोकर कारखाने में जाने के लिए तैयार होने

लगे तब जुबेदा ने अपना मुँह गम्भीर बनाकर कहा—इस मकान में मेरा रहना नहीं हो सकता······!

जमाल जुबेदा की ओर से ऐसी बातों के अभ्यस्त नहीं थे, अपनी परिचित अन्य स्त्रियों की तरह जुबेदा बात का बतंगड़ बनानेवाली स्त्री न थी; इसलिए आज उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर जमाल दंग रह गए। उन्होंने सोचा कि कुछ दाल में काला अवश्य है। उनके सुपुष्ट गोल चेहरे पर बल पड़ गए। वह धम से एक कुरसी पर बैठ गए।

—क्यों ?

—क्यों क्या कहूँ ? इस मकान में कोई शरीफ औरत रह नहीं सकती—जुबेदा ने कहा।

—क्यों ?

—यों ही······!

—यों ही क्या ? फिर भी तो कोई वजह होनी चाहिये।

जुबेदा कुछ देरतक जैसे उधेड़बुन में पड़ी रही कि कहे या न कहे; फिर बोली—एक बाजारू औरत के साथ एक मकान में कोई शरीफ औरत रह नहीं सकती।

बाजारू औरत ? वेश्या ?—जमाल इस तरह आश्चर्य में पड़ गए, जैसे वे आसमान से गिरे हों।

हाँ, वेश्या, इस मकान में है······!

हमारे मकान में ? वेश्या हमारे मकान में ?

हाँ-हाँ······ !

जमाल उत्तेजना के मारे उठ खड़े हुए, वे चिल्लाकर बोले—हमारे मकान में वेश्या? कैसी बातें कह रही हो? कुछ नशापत्ता तो नहीं कर खाया है। अच्छा, तो फिर यह बात है? यहाँ तक? अरे शौकत! शौकत! अभी झाड़ू मारकर निकाल दे—कहकर, वे चिल्ला कर नौकर को बुलाने लगे।

मगर जुबेदा ने तुरत उन्हें हाथ पकड़कर बैठा दिया, और बोल उठी—चुप भी रहो, बच्चों की तरह यों हल्ला क्यों मचाने लगे। जुलफिकार ने वेश्या ला रक्खी है; भला शौकत कैसे निकाल सकता है? कुछ अक्ल से भी तो काम लो।

—जुलफिकार!

—हाँ, जुलफिकार ने तीन दिन से किसी बंगालिन को लाकर रखा है।

—मैं कहता हूँ, अभी कान पकड़कर निकाल बाहर करो, निकालती क्यों नहीं—जमाल ने बिना अधिक सोचे-विचारे ही कह दिया।

—निकाल भला कैसे दूँ?

—कैसे? नौकर से? यह कौन-सी बड़ी बात है?

जुबेदा ने कहा—यह मकान कोई तुम्हारा केवल अपना ही तो है नहीं, यह तो उसका भी है……।

—ओह—इतनी देर के बाद सारी बातें जमाल की समझ में आ गईं।

वह कुछ चिन्तित हो गए।

अकस्मात् जैसे रोशनी पाकर जमाल बोले—क्या मैं उसका बड़ा भाई नहीं हूँ ? उसके लिए जो मैं अच्छा समझूँगा, करूँगा। क्या वह इतना बड़ा हो गया है कि मेरी बातों पर मुँह खोलेगा ? अभी बेंत से उसे ठीक कर दूँगा।

जुबेदा अपने पति देवता के शौर्य-वीर से भली-भाँति परिचित थी, वह पति की इस तरह बावन गज लम्बी बातें सुनकर मुस्कराई।

—रहने दो, बेंत लगाने की कतई जरूरत नहीं; सिर्फ बदनामी करवाओगे और कुछ नहीं—जुबेदा बोली। बीच-बीच में वह अपने पति को जरा गुदगुदाना पसन्द करती थी।

जमाल असहाय की भाँति बोल उठे—तो फिर ?

जुबेदा जरा सोचकर बोली—हमलोग इस मकान को ही क्यों न छोड़ दें ? हमलोगों का एक दूसरा भी मकान तो है, अच्छा हो, वहीं जाकर रहें ? क्यों नहीं ?……।

—क्या ? उस पाजी के डर से हम मकान ही छोड़ दें ? मुझे तुमने समझा क्या है ?

जमाल फिर से भड़क उठे।

जुबेदा परिस्थिति को बिगड़ते देख सँभलकर बोल उठी—खैर तुम्हारी जो मरजी हो वही करो, मैं तो आज रोशनी जलते ही मामा के घर चली जाऊँगी, तुम्हारे जी में आवे, भाई-भाई में फौजदारी लड़ना, चाहे एक दूसरे का खून करना। मैं कौन होती हूँ जो तुम मेरी कुछ सुनो—कहकर जुबेदा साड़ी के छोर से आँख पोंछने लगी।

जुबेदा के आँसू काम कर गए, जमाल अपने रास्ते आकर बोल उठे—रोती क्यों हो जुबेदा ? जो कुछ करना चाहिए, मुझसे कहो। मगर अभी तो मुझे कारखाने जाने में देरी हो रही है...।

—इस मकान का बूदोबास बिलकुल उठा दो और चलो उस मकान में; वहाँ से कारखाना भी तो करीब ही पड़ेगा।

—हाँ, ऐसा कहो तो कोई बात भी है, मैं उसके डर से मकान छोड़ देना पसंद नहीं कर सकता।

आखिर नतीजा यह हुआ कि दूसरे मकान में जाने के सामान होने लगे। जुलफिकार के खाने-पकाने लायक बर्तन भांड़े रखकर सब उस मकान में भेज दिए गए।

जुलफिकार ने मकान के अन्दर जो हल्ला होते और कुलियों को लगातार आते-जाते सुना तो शौकत से पूछा—अबे शौकत, क्या मामला है ?

शौकत ने कहा—बेगम नये मकान में चली जा रही हैं।

जुलफिकार के जिह्वाग्र पर एक छोटा-सा प्रश्न आया, किन्तु उसने केवल इतना कहा—ओह !—और चुप हो रहा।

बत्ती जलने के वक्त तक प्रायः सब सामान लदकर इस मकान से उस मकान तक चले गए। संध्या के बाद जुबेदा लड़कों का हाथ पकड़कर जुलफिकार के कमरे में आई और बोली—जाती हूँ भाई !

जुलफिकार उठकर खड़ा हो गया, और उसने आश्चर्य से कहा—क्यों ?

गले को साफ करती हुई जुबेदा बोली—यों ही, इसके अलावा

वह मकान भी तो हमलोगों का है। और सच तो यह है कि वहाँ से उनको कारखाना नजदीक पड़ेगा। बार-बार आने-जाने में उन्हें बड़ी तकलीफ होती है।

जुलफिकार असली कारण तो भली-भाँति जानता था, उसने सोचा कि केवल भद्रतावश ही वह असली कारण को मुँह पर नहीं ला रही है। थोड़ी देर के लिए वह अपनी भाभी की भद्रता से मुग्ध होकर अवाक् रह गया, किन्तु तुरत उसे दया आया कि उसके भाई तथा भाभी इतनी शांत-प्रकृति की हैं, तभी तो वह इस सर्वनाश को प्राप्त हुआ। हाय! यदि मेरी भाभी जरा कर्कशा होतीं और भाई जरा कड़े होते तो मेरा वर्त्तमान तथा भविष्य इस प्रकार बिगड़कर ही न रहते।

जुबेदा ने सान्त्वना के स्वर में कहा—तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। बावर्ची-खानसामा सब छोड़े जा रही हूँ, इसके अलावा जब दिल में आवे, हमारे यहाँ खाना खाने आ सकते हो।

जुबेदा उसे मकान की गृहस्थी समझाने लगी। जुलफिकार हाँ-हाँ तो करता जाता था, किन्तु वह तो खाक भी नहीं सुन रहा था।

जब जुबेदा की गाड़ी मोड़ पर जाकर आँखों से ओझल हो गई, तो एक अव्यक्त वेदना से जुलफिकार का हृदय ऐंठने लगा। वह उठकर उस कमरे में गया जहाँ वह बंगालिन तरुणी थी और बिना कारण उसे कोड़ों से पीटने लगा। वह युवती अत्यन्त भयभीत होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी, किन्तु वहाँ उसके आर्त्तनाद को सुनने के लिए कौन बैठा था? रात्रि के अन्धकार से टकरा-टकराकर आखिर वह चिल्लाहट आप ही बन्द हो गई।

१५

इसके तीन दिन बाद सुरमा ने ताँगे पर चढ़कर लड़के को जुलफिकार के मकान पर पहुँचा दिया। जुलफिकार मन में असन्तुष्ट तो अवश्य हुआ, किन्तु उसने लड़के को लेने में कोई बखेड़ा खड़ा नहीं किया। उसने सोचा—कुछ नहीं तो यतीमखाना तो कहीं नहीं गया है, यदि आगे चलकर असुविधा जान पड़ी, और बच्चा भारस्वरूप मालूम हुआ तो उसे वहाँ भर्ती करा देना कोई मुश्किल बात न होगी। उसने सोचा कि एक मुसलमान बढ़ा, अच्छा ही है। इसके अतिरिक्त है तो यह उसीका लड़का। बच्चे की परिचर्या तथा देख-रेख के लिए एक दाई नियुक्त हुई।

सुरमा ने पहले ही तय कर लिया कि बच्चे को जुलफिकार के हाथ में सौंपकर वह अपने जीवन के इस अध्याय पर एकदम से पटाक्षेप कर देगी। अपने मन पर जोर डालकर वह दो-तीन दिन तक उस रास्ते से भी होकर नहीं निकली, किन्तु चौथे दिन किसी तरह से उसके दिल ने न माना। बच्चे का नन्हा-सा मुँह तथा तुतली बातें यादकर वह इतनी परेशान हो गई कि हाँफ उठी। उसने सोचा, न जाने उसकी क्या हालत

हो रही है—आह ! इतना मासूम । बच्चे को तनिक देख आने में हानि ही क्या है ? वह कोई वहाँ रहने तो जा ही नहीं रही है । यदि जुलफि-कार कोई छेड़छाड़ करे तो अलबत्ता कोई बात भी हो, किन्तु सुरमा ने सोचकर देखा कि इसकी कोई सम्भावना नहीं है । लड़का पहुँचाने के लिए जिस दिन वह गई थी, उस दिन तो उसने शुरू से आखीर तक उसके साथ भद्रव्यवहार ही किया था ।

फिर क्या था, सुरमा नित्य एक बार लड़के को देखने के लिये जाने लगी । जुलफिकार कभी तो उपस्थित रहता था और कभी नहीं । वह सुरमा के साथ एक आदर्श भद्र पुरुष की भाँति व्यवहार करता था और लड़के के सम्बन्ध में सुरमा जो भी बात कहती, उसमें वह कभी मीनमेख नहीं करता था ।

सुरमा को धीरे-धीरे नौकरों से पता लगा कि जुलफिकार धीरे-धीरे पतन के गड्ढे में गिर रहा है, यह बात सुनकर उसके लिए तो नहीं, लड़के के भविष्य के लिए सुरमा की चिन्ताओं का वारापार न रहा । सुरमा ने सोचकर देखा कि या तो जुलफिकार को इस गड्ढे से निकालकर उसका सुधार करना पड़ेगा, या लड़के को ही उससे ले लेना होगा, नहीं तो लड़के के भविष्य का खुदा ही हाफिज रहेगा । ऐसी परिस्थिति में लड़के के लिए क्या आशा की जा सकती है ? किन्तु सुरमा जुलफिकार में एक बहुत ही आशाजनक बात देख रही थी और उससे वह बहुत खुशी थी, वह यह कि जुलफिकार बच्चे को बड़ा प्यार करता है । सुरमा को कुछ ऐसा भी मालूम हो रहा था कि यदि जुलफि-कार सुधर सकता है, तो उसका बीज यही है ।

इस प्रकार कुछ दिन बड़ी अच्छी तरह कटे। सुरमा जुलफिकार की परवाह न कर निःसंकोच आती-जाती रही, जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध था उसको पूर्ण विश्वास हो गया था कि यहाँ किसी तरह का डर नहीं है। बच्चे ने पहले-पहल तो रो-पीटकर इस नई व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की, किन्तु क्रमशः वह इस व्यवस्था का अभ्यस्त हो चला। उसके बाद उसके हृदय ने इसे ही स्वाभाविक समझकर मान लिया।

धाय की ओर से लाड़-प्यार में कोई त्रुटि न होने पर भी बच्चा अपनी माँ को ही अपना अधिक समझता था। क्या वह समझता था कि घड़ी दो घड़ी के लिए जो वहाँ आती थी वही उसकी माँ है, और जो दिन भर उसकी देख-रेख करती है वह उसकी कोई नहीं? समझे-बे-समझे वह प्रतिदिन माँ के आने के निर्दिष्ट समय पर अपनी अनुभूति और समस्त शक्ति को प्रबल रूप से सजग रखकर पड़ा रहता था। उसे अनुभूति होती—पहले एक हलकी-सी पदध्वनि होगी, इसके बाद धीरे-धीरे एक सुपरिचित कोमल स्पर्श होगा, फिर उसे बिस्तरे पर से उठाकर गोद में लेना, उसके बाद चुम्बन, लाड़-प्यार तथा "मुन्ना रे लल्ला रे" इत्यादि अर्द्ध अस्फुट शब्दों की अजस्र झड़ी-सी।

वह रोज इस घड़ी के लिए बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा करता था। यही उसके जीवन का मुख्य आनन्द था।

अकस्मात् बच्चा बीमार पड़ गया। शाम को आकर सुरमा ने देखा। उसके सिर पर बल पड़ा, उसके मन में मानों किसी गम्भीर विषय ने अपनी छाया डाल दी। उसने धाय से पूछा—डाक्टर बुलाया

गया है ?

जुलफिकार उस दिन वहाँ मौजूद था, धाय के बोलने के पहले ही वह बोल उठा—हाँ, डाक्टर बनर्जी देख गये हैं, फिर शाम के बाद आवेंगे।

सुरमा के आने के समय इस कमरे में जुलफिकार कभी-कभी मौजूद तो रहता था, किन्तु कभी कुछ कहता नहीं था, आज अचानक उसे बोलते देखकर सुरमा सहम गई। बहुत दिन पहले की एक घटना उसके स्मृति-पटल पर सजग हो उठी, वह कुछ देर तक मूक होकर जुलफिकार की ओर देखती रही, फिर बच्चे को हिलाने लगी। जुलफिकार ने लड़के के बीमार पड़ते ही डाक्टर को बुलाकर दिखा भी दिया और काफी देख-रेख भी की—यह सोचकर उसे प्रसन्नता हुई कि जुलफिकार एकदम पशु-प्रकृति का नहीं है, उसमें भी दया, ममता, स्नेह आदि कोमल मनोवृत्तियाँ हैं, क्या नहीं है?—यह बात उसे उस दिन मालूम हुई!

जुलफिकार ने जब देखा कि सुरमा ने उसकी बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, तब वह क्षोभ तथा अभिमान से चोर की भाँति चुपचाप चला गया। वह जब चला जा रहा था तब उसकी व्यथित आकृति पर सुरमा की नजर पड़ी और इस तरह उसे देखकर उसके मन को जरा ठेस लगी, उसका इरादा तो उसे दुःख देने का नहीं था।

सुरमा ने धाय से रोग के विषय में पूछा। धाय बड़ी पुरानी थी, उसने रोग का पूरा-पूरा विवरण उसके सम्मुख रख दिया।

जब सन्ध्या के समय नौकरानी ने आकर कमरे में रोशनी रख दी

तो सुरमा को होश आया कि आज देरी हो गई, नित्य के जाने का समय कभी निकल गया, फिर भी रोगी बच्चे को उस पेशेवर धाय की देख-रेख में छोड़ जाने की उसे जरा भी तबीयत न हुई। चाहे वह जैसा भी हो, है तो वह उसी के जिगर का टुकड़ा ही न। कैसे वह उसे ऐसी बीमारी में असहाय छोड़कर चल दे ? यदि इस बीच में उसे कुछ हो जाय तो फिर अफसोस करने के सिवा और क्या रह जायगा। उसने तो अपने कानों से सुना है, डाक्टर को कहते हुए——टा-इ-फा-ए-ड्।

उस मासूम बच्चे में जीवनी-शक्ति ही कितनी ? टाइफाएड् कितनी भयानक बात है ?

वह गई नहीं, लड़के के पालने को धीरे-धीरे झुलाने लगी, किन्तु उसके मन में कुछ बोझ-सा मालूम हो रहा था······। वह अपने इस फैसले से पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो रही थी, कहीं कुछ खटक रहा था, और यह खटका प्रतिक्षण अधिकतर वेगबल संचय कर रहा था।

जब टन् टन् करके घड़ी में दस बजे तो सुरमा बच्चे का धाय की गोद में देकर, जाने के लिये उठ खड़ी हुई।

नहीं, अब रात बहुत हो गई, और अब बच्चे की हालत भी कुछ अच्छी मालूम हो रही है।

सच बात तो यह थी कि बच्चे की हालत वैसी ही थी।

ज़ुलफिकार कब कमरे में आया, इसका सुरमा को पता नहीं था। उसने अब उठते समय देखा कि ज़ुलफिकार खुले जँगले के सामने कुरसी पर बैठा है। कमरे की रोशनी धीमी कर दी गई थी, ज़ुलफिकार के मुँह पर चाँदी के वर्क की तरह चाँदनी उमड़ रही थी। स्पष्ट ही

उसकी आकृत पर वेदना की छाप थी। उसकी सुन्दर आकृत पर वेदना की यह छोटी-सी घनघटा बड़ी मनोज्ञ प्रतीत हो रही थी!

सुरमा ने चादर ओढ़कर बच्चे की ओर अन्तिम बार दृष्टि डाली और हृदय पर वेदना का एक बोझ लादकर लौट पड़ी। जुलफिकार ने सुरमा को जाते देखा, और देखा बच्चे की ओर। उसने एक गहरी साँस ली, इस गहरी साँस से सुरमा के हृदय में हलचल-सी मच गई। बच्चे के अमंगल की आशंका से काँपकर क्षण भर के लिये वह ठिठकी, खड़ी हो रही, जैसे कुछ उधेड़बुन में पड़ी हो, फिर साधारण तरीके से निकलकर तुरत बाहर की ओर चल पड़ी।

जुलफिकार उसके चले जाने के बाद थोड़ी देर तक किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा बैठा रहा, फिर उठकर सुरमा की कुर्सी पर बैठ गया और बच्चे की ओर विषादभरी दृष्टि से देखने लगा।

१६

दूसरे दिन सुरमा दिन के साढ़े दस बजे ही आ डटी। उधर अध्यापक रवाना हुए, और इधर सुरमा आकर बच्चे की रोग-शय्या के पास आ बैठी। रात को उसे जरा भी नींद नहीं आई थी, उसके सब स्नायु बड़ी उत्तेजित अवस्था में थे। उसने देखा कि जुलफिकार लड़के के पास बैठा है, उसकी आँखें बैठ गई हैं, मुँह कुम्हला गया है। सुरमा को लगा जैसे इस आदमी ने सारी रात यहीं बैठकर काट दी है।

सुरमा गम्भीर होकर लड़के की ओर बढ़ी और उसे गोद में उठा लिया। रोग में कुछ कमी हुई है, ऐसा उसे जरा भी बोध न हुआ। सुरमा के आते ही लड़के का भार हलका होते देखकर जुलफिकार कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ, और चुपचाप जाकर दूर की एक कुरसी पर बैठ गया। वह कुछ विशेष चिंता में निमग्न था, यह बात नहीं, केवल बात यह है कि उसका सारा मन असन्तोष के भाव से भर रहा था, यदि उसे दुःख था तो केवल यही। बचपन से, हाँ अत्यन्त बचपन से ही उसने बराबर असन्तोष का जीवन व्यतीत किया है, उसके पिता को तो व्यापार के अतिरिक्त कोई धुन ही नहीं थी, बड़े भाई की वह जरा

भी परवाह नहीं करता था, और मजेदार बात यह है कि उसके बड़े भाई जमाल इसके लिये जरा भी दुखित नहीं थे। इसलिए परिणाम यह हुआ था कि जुलफिकार हमेशा अपने लिए जिया था। यह कई दिन, बल्कि कई घंटे, दूसरे के लिए अपने आराम के कुछ भाग का बलिदानकर, वह अपने जीवन में एक नवीन स्वाद का अनुभव कर रहा था। ऐसा स्वाद, जिसका उसने कभी अनुभव नहीं किया था। इसलिए वह सोच रहा था।

देखते-देखते एक बज गए।

सुरमा बच्चे को यथासमय दवा आदि पिला रही थी, बच्चे की हालत कुछ अच्छी मालूम हो रही थी। जुलफिकार जहाँ बैठा था, वहीं बैठा रहा, न हिला न डुला, वह तो जड़ की तरह बैठा था। वह सो भी रहा हो, सो भी नहीं, क्योंकि उसकी आँखों की पलकों का गिरना जारी था।

सुरमा जुलफिकार के इस मौन-विषाद के भाव से मन-ही-मन रंज हो रही थी। आखिर वह आदमी अपने को व्यर्थ क्यों कष्ट दे रहा है ? क्यों वह इस प्रकार मुँह बनाकर बैठा है ? इससे बच्चे को कौन सा लाभ हो रहा है ? फिर इसकी आवश्यकता ही क्या है ? यह आदमी कल रात को सोया नहीं, यह तो स्पष्ट ही है; उसने शायद आज कुछ खाया भी नहीं। इस उपवास की बात सोचकर सुरमा खीझ-सी उठी और फिर वह खीझ क्रोध की सीमा तक पहुँच गई, इतना उसके लिए असह्य हो रहा था।

किन्तु उसने कुछ कहा नहीं, क्योंकि वह कुछ कह नहीं सकती थी। लगभग दो बजे के समय शौकत ने आकर जुलफिकार को खबर दी कि मजलिस-इ-हमैयत-इस्लाम के सदर उससे मिलने आए हैं। जुलफिकार ने पूरी बात भी नहीं सुनी और कह दिया—जाओ-जाओ मुझे फुर्सत नहीं है.........—और हाथों के आज्ञापूर्ण इशारे से उसे चले जाने को कहा।

शौकत सन्न होकर कुछ देर तक खड़ा रहा, वह इस गरज से देख रहा था कि जुलफिकार का दिमाग सही है कि नहीं; क्योंकि यदि उसका दिमाग सही होता तो वह खान बहादुर हाफिज इनायत हुसेन को इस प्रकार दुत्कार कर निकाल देने के लिये न कहता, शौकत को इस बात की दृढ़ धारणा थी। कानपुर क्या सारे प्रांत के किसी मुसलमान में इतना दम नहीं था कि उन्हें इस प्रकार उलटे पाँव लौटाने की हिम्मत करे, यहाँ तक कि कोई हिन्दू-नेता भी उन्हें अपने द्वार से बिना बात किये लौटा देने के पूर्व तीन बार सोच लेने को बाध्य था। अस्तु, शौकत अपने खामख्याल आका को खूब जानता था, इसलिए वह गिड़गिड़ाते हुए निकल गया।

किन्तु थोड़ी ही देर में वह फिर लौट आया, उसके हाथ में एक पर्चा था। जुलफिकार असंतोष के साथ पर्चे की परत खोलकर पढ़ने लगा, और अधिकतर असंतुष्ट हो झल्लाकर खड़ा हो गया, फिर एक बार रोग-ग्रस्त बच्चे की ओर देखकर वह कमरे से निकलकर इनायत हुसेन के साथ मिलने गया। इनायत हुसेन उसे इलाहाबाद से आया हुआ एक तार दिखाने आये थे। तार में यह था कि अपील में इब्राहीम

और छोटे की सजा बढ़कर फाँसी की सजा हो गई है, और दूसरों की भी सजा बढ़ गई है।

तार पढ़कर जुलफिकार ने एक अजीब अस्फुट शब्द किया, रात भर उसकी आँख नहीं लगी थी, वह कुछ खुश तो था नहीं, न ठीक-ठीक सजग ही था, इस कारण मौके के उपयुक्त नेतागिरी का अभिनय वह न कर सका। इसके अतिरिक्त उसके मन के भीतर जैसे कोई कह रहा था—क्यों ? क्यों यह सब ? इनसे फायदा ?

इनायत हुसेन ने एक ही दृष्टि में जुलफिकार के मन की बातों को ताड़ लिया, क्षण भर के लिए उसकी भौंहें तन गईं, फिर वह बोल उठा—तो अब क्या होना चाहिए ?

जुलफिकार इस सवाल के लिये तैयार नहीं था, वह चौंककर बोला—क्या होना चाहिए ?—फिर जरा सम्हलकर, आपे में आकर धीरे-धीरे बोला—सब अल्लाह की मर्जी है……।

इनायत हुसेन ने कहा—बेशक, फिर भी हिम्मते मर्दां मददे खुदा, प्रिवी कौंसिल में अपील की जाय न ?

—यकीनन, जरूर।

—इसके लिए आप जानते हैं, रुपयों की जरूरत है……।

—हाँ…………।

—मैं समझता हूँ, इसके लिए एक फंड खोला जाय और जनता से अपील की जाय, आप क्या फरमाते हैं ?

जुलफिकार ने कहा—जरूर, मैं क्या कहूँगा ? जो अच्छा समझिए, कीजिए।

इनायत हुसेन और जुलफिकार थोड़ी देर तक चन्दा उगाहने के सम्बन्ध में परामर्श करते रहे, जुलफिकार इनायत हुसेन की सभी बातों में हाँ, हाँ, करता जाता था। खान बहादुर इनायत हुसेन और चाहते ही क्या थे।

उधर जुलफिकार को जाते देखकर सुरमा ने धाय से पूछा—यह शायद सवेरे ही खा-पी चुके हैं?

—कौन?

—वह जो कुरसी पर बैठा था, क्या नाम है······।

—खाँ साहब की बात आप पूछ रही हैं?

—हाँ·········।

—कुछ नहीं खाया।

सुरमा अवाक् रह गई। धाय ने कहा—उन्होंने रात को भी नहीं खाया, हजार हो, अपना ही तो लड़का है······।

हाँ, सुरमा ने और कुछ नहीं कहा, क्योंकि अधिक बोलने पर यह आशंका थी कि वह किसी अप्रिय विषय पर प्रश्न कर बैठे।

जुलफिकार लौटकर अपनी कुरसी पर बैठ गया।

बच्चे की हालत नाजुक होने पर भी रात दश बजे सुरमा घर जाने के लिये उठ खड़ी हुई। उसके पैर तो उठने से इनकार कर रहे थे, किन्तु उसका मन कह रहा था कि वह जाने के लिये बाध्य है, किसी भी तर्क के द्वारा उसने देखा कि उसका यहाँ रह जाना उचित नहीं हो सकता। उसने आखिरी बार बच्चे के बिस्तर की सिकुड़न ठीक कर दी।

जुलफिकार जैसे इस मनोवैज्ञानिक मुहूर्त के लिये प्रतीक्षा कर रहा था। वह उसके रास्ते में खड़ा हो गया, और कहने लगा—बच्चे की हालत आज अच्छी नहीं है, अगर तुम आज यहीं रह जाओ, तो क्या हर्ज है ? मैं अकेला अगर बच्चे की रक्षा न कर पाऊँ, तो ? अगर मेरे यहाँ रहने की वजह से तुम्हें यहाँ रहने में इतराज है तो मैं और किसी जगह जाकर रात काट आऊँ।......—जुलफिकार की आँखें वर्षणोन्मुख हो रही थीं, जैसे वह इस प्रकार से उन बातों को व्यक्त कर रहा हो जिन्हें भाषा के द्वारा व्यक्त करने में वह असमर्थ था।

सुरमा ने बड़े ध्यान से जुलफिकार की बातें सुनीं, इसके बाद वह अकस्मात् जुलफिकार की ओर इस प्रकार घूरने लगी, जैसे उसे वह अभी भस्म ही कर देगी, या पत्थर में परिणत कर देगी।

उसकी दृष्टि के तीखेपन से जुलफिकार जैसे हक्काबक्का-सा रह गया। वह लड़खड़ाते हुए जाकर कुरसी पर बैठ गया, सुरमा लम्बी डगें भरती हुई जल्दी निकल गई। बाहर अन्धकार सायँ-सायँ कर रहा था।

१७

दूसरे दिन सबेरे से ही बच्चे की हालत खराब हो रही थी। हर घड़ी नाड़ी छूटने का डर था। जुलफिकार ने सोचा था कि सुरमा कल खीझकर तथा अपनी समझ में अपमानित होकर चली गई, अब शायद न आवे, फिर भी एक अदम्य आशा से प्रेरित होकर वह बारबार घड़ी के काँटे की ओर देख रहा था। दस बजने के बाद ही सुरमा आ धमकी। जुलफिकार ने डरते-डरते देखा कि कल की वह खीझ तथा झल्लाहट उसके चेहरे पर है या नहीं, उसने देखा कि उसका कहीं चिह्न भी नहीं है। नहीं है, नहीं है, उसके रग-रग में इसकी प्रतिध्वनि हुई। बच्चे की हालत देख-देखकर उसे बड़ी चिन्ता हो रही थी, अब सुरमा के आ जाने से जैसे उसका बोझ हलका हो गया और ढाढ़स बँध गया।

लेकिन जुलफिकार आज नित्य की भाँति दूर जाकर उदासीन की भाँति बैठा नहीं रहा, आज वह पास ही बैठकर लड़के पर नजर रखने लगा।

डाक्टर पाँच-छः बार आकर बच्चे को देख गया, किन्तु उसकी

हालत उसी तरह रही। सुरमा का कलेजा अन्दर-ही-अन्दर बैठा जा रहा था। एक बार तो उसने सोचा कि जो कुछ होने जा रहा है, अच्छा ही होने जा रहा है, इस लड़के की माया में ही तो फँसकर वह अपना जीवन नये सिरे से निर्माण करने का संकल्प कार्य रूप में परिणत नहीं कर पा रही है, यदि यह उठ गया तो······, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने जीभ काटकर कहा—क्या कुलक्षण की बात सोच रही हूँ, सैकड़ों जन्म तक यदि मैं नरक का कीड़ा ही बनकर रहूँ तो वह अच्छा है; मेरा राजा बेटा, मेरा मुन्ना तू जिन्दा हो जा, बस।······

रात दस बजे भी बच्चे की हालत में कुछ भी परिवर्तन दीख न पड़ा। फिर भी सुरमा उठ खड़ी हुई। सुरमा ने एक बार कमरे के चारों ओर देखा, जुलफिकार का पता नहीं था। तो क्या वह इस बच्चे को रोग-शय्या, शायद मृत्यु-शय्या पर अकेले इस पेशेवर धाय के भरोसे छोड़कर चली जावे? क्या किया जाय?

सुरमा कमरे के बाहर गई। जुलफिकार जैसे उसीकी प्रतीक्षा में खड़ा था। उसने कोई भूमिका बाँधने की चेष्टा न करके ही कहना शुरू कर दिया— सुनो सुरमा, आज मैं तुम्हें जाने न दूँगा, मैं पशुता के आवेश में आकर उसका पिता हो गया, यह मैंने माना, किन्तु इस कारण यदि वह दुःख आज हम पर टूट पड़े जो एक पिता के लिये सबसे बड़ा दुःख है, तो उसका बोझ अकेला मैं ही क्यों उठाऊँ? तुम चाहती थी या नहीं चाहती थी, चाहती हो या नहीं चाहती हो, तुम उसकी माँ हो, कम-से-कम अल्लाहताला की आँखों में; मनुष्य चाहे उसे स्वीकार करे, या न करे······।

सुरमा ठिठककर खड़ी हो गई और ध्यान से जुलफिकार के मुँह को घूरने लगी। जुलफिकार भी कुछ देर के लिये स्तब्ध हो गया, उसके बाद पहले से गम्भीर स्वर में वह कहने लगा—मुझे क्या मालूम होता है, जानती हो सुरमा? अल्लाहताला ने हमलोगों को यह लड़का नियाज फरमाया था, हमने या तुमने—किसी ने भी इसे स्वीकार नहीं किया था, इसीलिए अल्लाह शायद अपनी देन वापस ले रहे हैं……।

दोनों चुप हो गए, मानो अत्यन्त पवित्र तथा गूढ़ बात कही गई हो। जिसके बाद बात करने से उसकी पवित्रता में धब्बा लगने की आशंका है। बिजली के कोड़े की तरह जुलफिकार के शब्द-शब्द ने सुरमा के अंतरतम प्रदेश में एक तहलका-सा मचा दिया, उसके कलेजे के बन्धन-बन्धन को जैसे किसी ने मसलकर तहस-नहस कर दिया। आश्चर्य, भय तथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता के मारे उसकी बोलती बन्द हो गई। कुछ देर तक वह वज्र-आहत की तरह सहमी हुई खड़ी रही, किन्तु धीरे-धीरे वह फिर सावधान हो गई, और धीमे स्वर से, किन्तु दृढ़-कंठ से बोली—एक बाजारू वेश्या के साथ एक मकान में; रात के समय, मैं नहीं रह सकती, चाहे मेरा लड़का जिए या मरे।

उत्तेजना के मारे उसकी आँखों से आँसू टपटप गिरने लगे।

जुलफिकार ने कहा—अच्छा यह बात है—कहकर वह तीर की तरह दौड़कर ऊपर के तल्ले में गया, और पाँच मिनट बीतने के पहले ही एक अर्द्धसुप्त युवती को बाल पकड़कर घसीटता हुआ ले आया। सुरमा तब तक वहीं खड़ी थी, जैसे किसी ने उसके पैरों को वहीं जोड़

दिया हो। एक अदम्य कौतूहल की वशवर्तिनी हो वह वहीं पर खड़ी रही।

देखने से ही मालूम होता था कि जुलफिकार युवती को गहरी नींद से खींचकर अचानक घसीट लाया था। युवती की बड़ी-बड़ी डब-डबाई हुई आँखों में आश्चर्य तथा भय झलक रहा था। पशु की तरह विकट गर्जनकर जुलफिकार ने युवती को सड़क का रास्ता दिखलाते हुए कहा—निकल यहाँ से हरामजादी, अभी निकल मेरे मकान से, तेरा मनहूस चेहरा मैं देखना नहीं चाहता।

युवती इस प्रकार के बर्ताव से परिचित थी। उसने अपनी इस बीस साल की उम्र में ही पुरुषों की चंचलता के बहुत से प्रमाण पाये थे, वह देख चुकी थी कि वे देवी कहकर अभी जिसका चरण चुम्बन करते हैं, दूसरे ही क्षण उसे राक्षसी कहकर त्याग देते हैं। इसलिये उसे जुलफिकार के इस बर्ताव से आश्चर्य नहीं हुआ, बल्कि उसे क्रोध ही आया। वह करीब-करीब मकान की देहली पर खड़ी हो गई और बोली—मेरा सामान और तनख्वाह तो लाओ......।

आँखों की पलक मारते ही जुलफिकार लपककर ऊपर के तल्ले में चला गया। सुरमा का हृदय थरथरा रहा था। वह पास ही लेटे हुए रोगी बच्चे की बात भूल गई।

थोड़ी ही देर में जुलफिकार ने एक ट्रङ्क और शिथिल रूप से बँधा हुआ बिस्तरा लाकर मकान के बाहर पटक दिया। बिस्तरा सिर्फ लिपटा हुआ था, इसलिये वह खुल गया, और तकिया आदि सड़क पर बिखर गए। जुलफिकार ने आगे बढ़कर युवती के हाथ में एक सौ रुपये का

नोट रख दिया और कुछ न कहकर मकान का दरवाजा बन्द कर दिया। एक मिनट के लिये भी उसने यह सोचने का कष्ट नहीं किया कि इतनी रात बीते अकेली वह युवती इतना बड़ा ट्रङ्क तथा और सामान लेकर कहाँ और कैसे जायगी।

उस समय बच्चे ने रोना शुरू कर दिया था। वह रोना भी कैसा था कि एक क्षीण लड़खड़ाती हुई आवाज, जिसमें किसी के विरुद्ध प्रतिवाद नहीं था, जो केवल रोनेवाले की दुर्बलता तथा असहायता की घोषणा-मात्र थी।

सुरमा मानो मन्त्र-चालित की भाँति लड़के की ओर लपकी। अनस्थिरता की जो एक रश्मि उसके मन में थी वह इस करुण-क्रन्दन से सहज में ही लुप्त हो गई। इसके बाद वह फिर घर नहीं लौटी। वेश्या के साथ न रहने की आपत्ति उसने सोच विचारकर नहीं उठाई थी, किन्तु अब उस आपत्ति के दूर कर दिए जाने पर उसको और कुछ कहने का मुँह नहीं रहा।

१८

अध्यापक मजूमदार को जब दो दिन तक सुरमा का कोई पता नहीं लगा तो उन्होंने पुलिस को खबर दी। अध्यापक ने तो दो-एक दिन तक ऐसा दिखाया कि मानो वे इस घटना के प्रति एकदम उदासीन हैं, ऐसी बातों से उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, किन्तु जब कई दिन तक कुछ पता न चला तो वे स्वयं ही तलाश करने लगे। खोजते-खोजते वे एक दिन शहर के एक मुहल्ले में पहुंचे, वहाँ एक बड़े मकान के नीचे के तल्ले में एक कमरे का एक अधखुला जँगला देखकर उन्हें उसके अन्दर झाँकने की इच्छा हो आई। पहले-पहल तो उन्हें कुछ नहीं सूझा; क्योंकि वे रोशनी से करीब-करीब अँधेरे में देखने लगे, किन्तु धीरे-धीरे उन्हें कई चेहरे दिखाई पड़ने लगे।

सुरमा सिमटी हुई बच्चे को गोद में लेकर फर्श पर की कालीन पर बैठी हुई है, उसके चेहरे पर एक अजीब फीकापन झलक रहा था। उसके सामने एक सफेद बालोंवाला, मेंहदी से रँगी हुई दाढ़ी से युक्त एक अस्सी साल का मुल्ला था। इन लोगों से कुछ दूर एक कुरसी पर जुलफिकार बैठा था, उसके चेहरे से प्रसन्नता टपक-सी रही थी। मुल्ला किसी की ओर ध्यान न देकर कलमा-पढ़ाई के लिये मिले हुए एक कपड़े

तथा चवन्नी को बजाकर देख रहा था। बुड्ढे ने जरा खाँसा, फिर किसी की ओर न देखकर कहने लगा—कहो बेटी, ला इलाहा इल्लला...।

—ला इलाहा इल्लला।

—मुहम्मद रसूलिल्ला...।

—मुहम्मद रसूलिल्ला।

अध्यापक ने अधिक न सुना, पैर बढ़ाकर उन्होंने मकान का रास्ता पकड़ा। मकान जाने के रास्ते में उनके साथ शहर के कोतवाल की भेंट हुई, उसने पूछा—हल्लो डाक्टर, मिसेस मजूमदार का कुछ पता चला?

—हाँ मिला, थैंक यू—उन्होंने आग्नेय नेत्रों से कोतवाल की ओर देखा।

—अच्छी तो हैं?

—हाँ खूब अच्छी—भौंहें तानकर उन्होंने दूसरा रास्ता लिया। कोतवाल ने घृणा के साथ मन-ही-मन कहा—A learned ass, doesn't know manners.

दूसरे दिन एक स्थानीय उर्दू अखबार के पहले पृष्ठ पर छपा "सत्य धर्म की जय" और इस सुर्खी के नीचे यह खबर थी कि एक मशहूर हिन्दू वैज्ञानिक की स्त्री ने इस्लाम की धर्म-पुस्तकों को पढ़कर तथा उसके सार्वजनिक साम्यवाद तथा मित्रता के सिद्धांतों से मुग्ध होकर अपने पहले पति तथा समाज को तिलांजलि देकर अपने नन्हें से बच्चे के साथ दीनते इस्लाम स्वीकार कर लिया है, और कानपुर के उदीय

मान मुसलमान नेता जुलफिकार अली खाँ के साथ विवाह कर लिया है। इतनी तो खबर थी, सम्पादक ने इस पर एक लम्बा सम्पादकीय नोट लिखा, जिसकी आखिरी बात यह है कि यदि सत्य तथा धर्म की जय हुई है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? बहुत-सी कुरान की आयतें उद्धृत करके उन्होंने कहा है—ऐसा तो होना अनिवार्य था। इस प्रकार के लेखकों की प्रथा के अनुसार बहुत-सी कविता भी प्रमाण के रूप में उद्धृत की गई थीं।

× × ×

इसी प्रकार युग-युग में सब धर्मों की जय होती आ रही है, इस धर्म के जय-तरंग को कौन रुद्ध कर सकता है ? ६६ फी सदी धर्म-परिवर्तन का इतिहास इसी प्रकार है, और बाकी जो एक फी सदी है, वह केवल एक जेल से दूसरी जेल जाना है।

—इति—